उ
प
हा
र

'बेढब' बनारसी

पो० बक्स नं० ७०, ज्ञानवापी वाराणसी—१

प्रकाशक ओम्प्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो० बक्स नं० ७०, ज्ञानवापी, वाराणसी—१.
मुद्रक सन्मार्ग प्रेस, वाराणसी
संस्करण : तृतीय—११००
[अप्रैल : १९५८]
मूल्य : १ रुपया ७५ नये पैसे

उपहार

दो प्रकारके मनुष्य संसारमें संभवतः नहीं पाये जायँगे। एक तो वह जिसने दूध कभी न पीया हो; दूसरा वह जिसने उपहार कभी न पाया हो। ऐसे शायद मिल जायँ जिन्होंने कभी उपहार दिया नहीं किन्तु ऐसा मनुष्य जिसे जीवनमें कभी कोई उपहार मिला ही न हो कदाचित् ही देखनेमें आये। जैसे ऐसे भाग्यवान व्यक्ति मिलेंगे जिन्होंने दूसरोंके यहाँ डटकर भोजन किया है किन्तु अपने यहाँ भोजन करानेके समय कभी पत्नीको तिजरियाकी पारी आ जाती है, कभी रिश्तेदारों में कोई मर जाता है, कभी ससुरालमें विवाह पड़ जाता है जहाँ नेवतेमें बहुत-सा रुपया खर्च हो गया।

सबसे अधिक उपहार स्त्रियोंको ही मिलते हैं। अविवाहित अवस्थामें पितासे, भाईसे सबसे अधिक मित्रोंसे और विवाह के पश्चात् पिता-मातासे तो मिलता ही है, पतिदेवका तो काला बाल इसी उपहार समर्पण करनेमें उजला हो जाता है। एक अपने वकील मित्रको मैं जानता हूँ—जिनका प्रतिदिनका ही प्रोग्राम रहता था कि कुछ श्रीमतीजीके लिए ले जायं।

जब वह संध्या समय कचहरीसे बाल अस्त-व्यस्त, टाई टेढ़ी, पतलूनके सागरमें असंख्य लहरियाँ बनाये हुए लौटते थे तब जलपानके पश्चात् श्रीमतीजी पूछती थीं कि कितना मिला। वकील साहब वकील

होकर भी ईमानदार थे और आमदनीको छिपाते नहीं थे। उसी आयके अनुसार उन्हें उस दिन कुछ न कुछ लाना पड़ता था। किसी दिन साड़ी आती थी, किसी दिन जवाकुसुमकी शीशी, किसी दिन गोदरेज नम्बर एक, किसी दिन मलाईकी गिलौरी और किसी दिन और कुछ न सही तो गोपाल मन्दिरसे मलाईकी पूरी या ठोर ही सही। यह सब टैक्स तो इनकम टैक्सकी भाँति नित्यकी बात थी। सालाना सुपर टैक्स अलगसे लगता था। आर्मलेट है, चूड़ी है, और कुछ न सही तो इयरिंग तो बनती ही थी।

संभव है मेरे मित्रकी पत्नी अपवाद हों परन्तु ऐसा तो कोई भी पति न होगा जिसने साधारण आवश्यकताओंके अतिरिक्त महीनेमें एकाध बार श्रीमतीजीके कोमल कर पल्लवमें कुछ न कुछ सामान न रखा हो। वर्षमें एकाधबार तो सभी कुछ न कुछ देते हैं। यदि ऐसा भी कोई पति है जिसने वर्षमें भी एक उपहार न दिया हो तब तो उसे पति समुदायसे निकाल देना चाहिए। कवि लोग भी जिनकी अवस्था आर्थिक दृष्टिसे वही रहती है जो सामाजिक दृष्टिसे हरिजनोंकी है, और न सही तो अपने गीतोंके संकलनकी एक प्रति, या उन्हींकी भाँति दूसरे फाकेमस्तकी पुस्तक जो उन्हें उपहारमें मिली हो भेंट कर ही देते हैं। मैंने एक महाकविको देखा कि उन्होंने होलीके दिन साड़ीकी जगह अपनी कविताकी भेंट की। श्रीमतीजीने उसका उपयोग संध्याको पूड़ी बनानेके लिए अग्निदेवके आवाहनमें किया।

उपहारोंका ध्यान आते ही सिनेमाकी तारिकाओंकी सूरत सामने खड़ी हो जाती है। मैंने देखा नहीं, सुना है कि उनके यहाँ प्रतिदिन डाकसे, नौकरसे उपहारोंकी इतनी भीड़ लगी रहती है कि एक बाजार लगा रहता है। हृदयसे लेकर हारलिक्सका दूधतक उपहारमें जाता है। किसी सिनेमाकी पत्रिकामें पढ़ा था कि मुमताज शांतिको किसीने एक हाकी स्टिक भेंटमें भेजी थी। इस रहस्यवादका अर्थ मेरी समझमें नहीं आया। यह तो उसी भाँति हुआ कि महात्माजी या बुद्धको

कोई बटेर भेंट करता या सूरदासको सुरमा या औरंगजेबको शिवजी की पिण्डी।

कभी-कभी उपहार देनेवालोंको इतनी मानसिक कसरत करनी होती है जितनी फ्रायडको अपना सिद्धान्त फैलानेमें भी नहीं करनी पड़ी होगी। एक बार मुझे अपनी पत्नीकी बहनके विवाहमें ऐसी ही उलझन हुई। विवाहका निमन्त्रण आ गया। जानेकी तैयारी प्रायः हो गयी। सलाह होने लगी। क्या उपहार दिया जाय। बजटका भी प्रश्न था। साड़ी इत्यादि तो जायगी ही वह सनातन धर्म ही है। परन्तु नयी धाराके अनुसार कोई भेंट विशेष भी तो होनी चाहिये। मैंने कहा प्रसादजीकी कृतियोंका एक सेट-मेरी स्त्रीने कहा मेरी बहन कामायनी और आँसू लेकर क्या करेगी। कोई ऐसी वस्तु हो जो प्रतिदिन काम आये जिससे वह रोज याद रखे। सोनेकी चूड़ियोंके लिए बजट नहीं था इयरिंग साधारण वस्तु थी। मैंने कहा अच्छा कितने तककी चीज हो। मैं बाजार जाता हूँ। देखकर कोई बढ़िया वस्तु मोल ले लूँगा। कोई पचीस रुपये तक हो। सुनते ही श्रीमती पर मानो सुपर फोर्ट्रेसने बम गिरा दिया। बोलीं, इससे न देना हो अच्छा है। न रुपये हों तो मत दो। कोई वह माँगने आती है। मैंने पूछा अच्छा पाँच सात सौ की कोई चीज दे दी जाय। मोटर बाइसिकिलके सम्बन्धमें क्या राय है। इसपर उनका पारा उस दर्जेपर पहुँचा जो साधारण थर्मामीटरमें नहीं होता। अन्तमें बहुत वादविवादके पश्चात् निश्चय हुआ कि पचास-साठ तक की कोई वस्तु होनी चाहिए।

सन्ध्याको शहरकी दूकानें छानीं, कितने दूकानदारको घण्टों परेशान किया। अन्तमें एक दूकानदारके यहाँ एक बड़ा बक्स देखा, किसी धातुका बना था। उसमें प्रसाधनकी सामग्रियाँ रखी थीं। चाँदीकी मुठियाकी कंघी थी, बालके बुरुशपर चाँदी जड़ी थीं और भी अनेक सुन्दर वस्तुएँ उसमें थीं। पैंसठ रुपये का था। बस

निश्चय किया कि यह उपयोगी भी है, सुन्दर भी है। यही देना चाहिए। दूसरे दिन घरसे रुपया लेकर चला तो मनमें सोचने लगा कि इतना रुपया बरबाद करनेकी क्या आवश्यकता है, स्त्रियोंको तो रुपया कमाना नहीं पड़ता, उन्हें क्या, फरमाइश कर दी। देखें सम्भव है कोई और सुन्दर वस्तु कम दाममें मिल जाय। खोजते-खोजते एक और प्रसाधनका बक्स मिला। इसमें चाँदीका सामान नहीं था। निकेलपर चाँदी चढ़ी थी। यह पैंतालीस रुपयेका था। बस निश्चय किया कि यही लूँगा। कल ले चलूँगा। आज तो देर हो गयी। दूकानदारसे कह दिया इसे अलग रख दीजिये कल ले जाऊँगा।

दूसरे दिन सोचने लगा लूँगा तो यही और भी देख लूँ, देखनेमें क्या हर्ज है। कोई अच्छी वस्तु दृष्टिमें आ ही जाय। एक सोने चाँदीकी दूकानपर ब्रूच दिखाई पड़ा। बड़ा सुन्दर बना था। बीचमें सोनेका हृदय था जिसके भीतर एक तीर घुसा था। हृदयके बीच एक मानिक जड़ा था। ऐसा रंग था मानो किसी युवक प्रेमीके मस्त हृदय-से अभी-अभी एक बूँद रक्त चू पड़ा है। बिजलीकी किरण जब पड़ती तब जान पड़ता रक्तका निर्झर फूट निकलेगा। मैं समझता था पाँच सौका तो वह रत्न होगा। दाम पूछनेपर पता चला उनतालीस रुपयेका है। यह नगीना शीशा नहीं है किन्तु वैज्ञानिक ढंगसे तैयार किया गया मानिक है।

मैंने चुपकेसे उसीको ले लिया। स्त्रीसे झूठ बोलनेकी ठानी। एकबार जी दहला। फिर याद आयी कि प्रमाण है। धर्मराज युधिष्ठिर भी झूठ बोले थे। घर आकर मैंने कहा चीज तो बड़ी अनुपम मिल गयी है। है तो पचहत्तरका। इसका मानिक बरमाके यनाजांगकी खानसे निकला था। वह तो एक बर्मी भगोड़ेने बेच दिया, मुफ्तमें मिल गया।

मेरी स्त्रीने देखा, कहा अच्छा इसे मैं रख लेती हूँ, उपहारके लिए कोई और वस्तु ले लेना।

दीपक

कल रातमें मैं कविता लिख रहा था। एक बहुत सुन्दर पक्ति बनी दूसरी पंक्तिके लिए कुछ सोच रहा था। सोचता था कि उत्प्रेक्षा अच्छी होगी कि रूपक। विचार आते थे किन्तु जंचते न थे। क्योंकि मैं जो कुछ लिखता हूँ यह सोच कर लिखता हूँ कि वह ठोस साहित्य हो, शाश्वत हो। आजसे दस बीस हजार साल बाद भी पढ़ा जाय। अमर साहित्य रचना ही मेरा काम है। इसीलिए लिखनेमें देर लगती है। कभी कभी जब मुझसे लोग लेख माँगते हैं और मैं लिख नहीं पाता, समझमें नहीं आता कि क्या लिखूँ, बुद्धिमें कुछ आता नहीं तब यही भावना मेरी रक्षा कर देती है मैं यही कहकर अपनी जान बचा लेता हूँ कि समय कम है इतने में कोई ठिकाने की चीज लिखी नहीं जा सकती। मैं तो ऐसे साहित्यका सर्जन करता हूँ जो युग-युग तक कायम रहे। इससे धाक भी जम जाती है और रक्षा भी हो जाती है। मैं यही सोच रहा था कि यकायक अन्धेरा हो गया। अभी अभी ६० मोमबत्तीकी शक्तिके प्रकाशमें उजले कागजपर मेरी कलमसे निकले काले अक्षर ऐसे नाच रहे थे मानो लंदनके किसी नाच घर में कोई अबीसीनियाकी कुमारी मनीपुरी नृत्य कर रही हो। आह

एक दम सब अन्धेरा ! इसी प्रकार जीवित जगतमें रहते रहते. सहसा लोग चल बसते हैं। मेरी कविता अभी समाप्त नहीं हुई और लम्प बुझ गया। जैसे मनुष्योंकी गति होती है। कोई अभी घर नहीं पूरा कर सका है, किसीकी मन्त्री बननेकी अभिलाषा अभी पूरी नहीं हो पायी है, कोई अपनी पुत्रीका विवाह सम्पन्न नहीं कर सका है और कोई अपने योग्य पुत्रको किसी अच्छे स्थानकी व्यवस्था नहीं कर सका है और कोई अपनी पासबुकमें इच्छानुसार अंकोंका जोड़ नहीं देख सका है और आत्माका चिराग गुल हो गया। सब कार्य अपूर्ण रह गया। मेरी कविता भी अधूरी रह गयी। लम्पको इधर उधर देखा। दूसरे लम्प देखे। जान पड़ा बिजलीका तार जल गया है न तो तार मेरे पास, न जानता ही था कि ठीक कर सकूं। शेक्सपियर और गाल्सवर्दीके नाटकोंमें या बिहारी और तुलसीकी कविताओंमें कहीं बिजलीका तार ठीक करनेकी तरकीब बतायी नहीं गयी। फिर ठीक करनेकी बात ही करना व्यर्थ था।

घरमें पता लगाया। दीया हो तो वही जलाया जाय। इधर उधर ढूँढ़नेपर पता लगा कि दीया नहीं है। दिवालीमें जलानेके लिये कुछ खरीदे गये थे। सब फेकफांक गये। और जहाँ सौदामिनीका जगमग प्रकाश हो वहां दीपककी टिमटिमाहटकी आवश्यकता ही क्या हो सकती थी। रसोई घरसे लेकर स्नानगार तक और सीढ़ीसे लेकर बैठके तक बिजलीके लट्टू ही लगे थे। दीपककी आवश्यकता ही क्या थी। दीपकके धुँएसे घर काफी गंदा हो जाता है, जैसे मुखपर काली दाढ़ी निकल आनेसे सौन्दर्यकी महत्ता कम हो जाती है और लोगों को उसे हटानेके लिये अनेक उपचार करने पड़ते हैं।

मुझे भी धुन कविता पूरी करने ही की थी। सोचा दीयेका काम तो छोटी कटरी दे सकती है। थोड़ी रुई और तेल मांगा। रुई तो बड़ी अच्छी बंगाल कैमिकल फारमेसीकी विचित्र गंधयुक्त मिल गयी। घर में रख रखी थी कि कहीं चोट-चपेट लग जाय तो काममें आ

सकती थी। तेल भी आया किन्तु सरसों वाला नहीं। पाटनवाला कम्पनीका आँवला हेयर आयलका एक बोतल सामने मिला। पता चला कि सरसोंका तेल हानिकर वस्तु है इसलिए नहीं मंगाया जाता, इससे बेरी-बेरी, मलेरिया, फाइलेरिया, दमा, क्षय होनेका भय रहता है इसीसे तेल घरमें नहीं मंगाया जाता। दो डब्बा पोलसन, एक टिन कोटोजम, एक टिन दालदा अवश्य मिले।

मेरे मनमें भी कुछ सनक सवार थी। मैंने कटोरीमें कोटोजम डाला। बत्ती बनायी और जलाया। क्षीण प्रकाश वैसे ही लग रहा था जैसे इस युगमें सत्य। उसके प्रकाशमें लिखता क्या, उसीकी ओर देखता रहा। कबतक कह नहीं सकता। विचारोंकी तरंगे एकपर एक उठती जा रहीं थीं जैसे मोहंजोदड़ोंके खंड़हरमें घर एकके उपर एक बने हैं। प्रकाश इतना मन्द था कि कोई पतंग भी नहीं आ सकता था। न प्रकाश ही न पतंग की आवाज ही। फिर ऐसे दीपकका लक्ष्य ही क्या हो सकता है। लाखों भारतीय नर नारीके समान किसी भाँति जीवन बिता रहा था।

पुरानी सभ्यता और संस्कृतिके समान मानों यह अन्तिम सांस ले रहा था। वह युग समाप्त हो गया जब कवि दीपककी कल्पना करके शलभके त्याग और बलिदानका जलानेवाला गीत गाता। दीपकका मनोरभ रूप अब संसारसे विदा हो रहा है। मन्दिरमें, शिवालयमें, देवालयमें बिजलीका ही साम्राज्य है। और है भी ठीक। दीया हो, फिर बत्ती बने, तेल या घी हो, सलाई रगड़ी जाय तब दीपक जलाया जाय। बीच-बीच बत्तीको उकसाना पड़े। इन प्रस्तर युगकी क्रियाओंके लिए आज स्थान कहाँ। जीवन इतना उपयोगी हो गया है कि उसका एक एक क्षण नष्ट किया जाना बर्बरता है। बैठे-बैठे लेटे लेटे स्विच दबाया और सारा घर जगमगा उठा।

अब वह चित्र तो देखनेमें नहीं आ सकेगा कि रमणियां घरमें एक ओर से दूसरी ओर जा रही हैं। हाथमें दीपक है। हवाका झकोरा

आया और उन्होंने अपने आंचलसे दीपकको घेर लिया और अधरों-पर मन्द मुसकान लिये, हृदयके निकट मन्द प्रकाशवाले दीपकको लिये मन्द-मन्द गतिसे चल रही हैं। समयकी गतिका उन्हें कुछ ध्यान नहीं। बिजलीका लट्टू आंचलकी छोरमें छिपाकर कोई नहीं चल सकता। एक समय था जब गृहणी हाथमें थाली लिये है, थालीमें नैवेद्य, पुष्पोंकी माला, सुगन्धित द्रव्य सजा है और सबके बीच दीपक मधुर हास्य बिखेरता जल रहा है और गृहणी पूजा करनेके लिए मंदिर जा रही है। मंदिरमें पूजासे भगवान मिलते हैं या नहीं किन्तु कविताकी छटा, काव्यका मनोरम वातावरण तो बन ही जाता था। मुझे स्मरण है किसी उत्सवपर छोटे-छोटे दीपक जलाकर गंगाकी धीमी-धीमी लहरोंपर बालिकाएँ फैला देती थीं ऐसा जान पड़ता था कि सारे नक्षत्र पृथ्वी पर उतर आये हैं और जननी जान्हवीके वक्षस्थलपर खेल रहे हैं। कभी-कभी ऐसा जान पड़ता था कि बनारसी बानेकी साड़ी फैली हुई है और उसपर सुवर्णके फूल कढ़े हैं। क्या गंगामें बल्ब बहाये जा सकते हैं?

किन्तु मैं भावुक होता चला जा रहा हूँ। मैं भूल रहा हूँ कि मैं बीसवीं शतीमें रहता हूँ। दीपक तो प्रस्तर युगकी स्मृति है। आज दीपकको स्मरण करना संसारको पाँच हजार साल पीछे खींच ले जाना है। यदि हमारा उसमें विश्वास भी हो तो क्या इतना साहस हो सकता है कि पुरानी बातोंका स्मरण दिलाऊँ। प्रतिगामी, दकि-यानूसीकी पदवी अपने नामके साथ जोड़नेके लिए तैयार रहूँ? कुछ फैशनका भी तो ख्याल करना चाहिये। संसार कहांसे कहां चला गया उसे पीछे खींचना संसारके प्रति गद्दारी है।

दीपकके प्रकाशमें चमक भी तो नहीं सकता कोई। बिजलीके प्रकाशमें आप चमक सकते हैं, आप अच्छी तरह देखे जा सकते हैं। लोग आपकी विशेषताओंको देख सकते हैं। रात दिन हो सकता है। प्रकृतिपर विजय हो सकती है। दीपकके साथ मेरी सहानुभूति है किन्तु विज्ञानके सम्मुख विवशता है।

दाढ़ी और प्रेम

कभी आपने दाढ़ी बढ़ते देखा है? अभी आज आपने सेवनो-क्लाकसे खूब चेहरेको सिमेंटकी गचके समान रगड़कर चिकना बनाया। कल सबेरे कटे हुए अरहरके खेतके समान खूँटियाँ निकल आयीं। कब निकली इसका पता नहीं। जिस प्रकार दाढ़ीका निकलना कोई नहीं देख सकता अनायास किसी सचेतन भावकी जागर्तिके बिना नवविकसित कदंबके फूलके समान कच प्रस्फुटित हो जाता है उसी प्रकार किसी तैयारीके बिना, किसी निर्देशके बिना प्रेम उत्पन्न हो जाता है। कल दो-पहरतक भले चंगे थे। दिनको कढ़ी बननेके कारण एक रोटी अधिक भी खायी थी। लेटे भी अच्छी तरह थे; तीन बजे चाय पी उसमें चीनी कम थी। इसका अनुभव आपको हुआ। संध्याको बाहरसे घूमकर आप आये, बैठे बैठाये प्रेम हो गया। भूख ही नहीं है। बढ़िया कट-हलकी तरकारी बनी है, थालीमें बाग बाजारके दो रसगुल्ले भी हैं किन्तु एक पूरीसे अधिक आप खा नहीं सके। आपको यह ख्याल नहीं है कि कुरता आपने कहाँ उतारा और उसमेंके पैसे गिर पड़े कि ज्यों के त्यों हैं। पहले तो आप हिंदू जाति के समान चिंतामुक्त होकर सोते थे अब

तो नींद ही नहीं आ रही है। कभी आप छतकी कड़ियाँ गिनते हैं, कभी चादरकी शिकन गिनते हैं, कभी अलजबराके प्रश्न हल करने लगते हैं।

दाढ़ी और प्रेमसे इतना ही साम्य नहीं है। आरंभमें दाढ़ी काली रहती है। प्रेम भी यौवनमें वासनापूर्ण होता है। यौवनके प्रेमका अन्तिम ध्येय वासनाके अतिरिक्त और क्या हो सकता है। कमसे कम पार्थिव प्रेम तो ऐसा होता ही है! कदाचित् शुक ऐसा कोई युवक संसारमें हो जो प्रारभसे ही दैहिक भोग विलासकी ओर दृष्टि न पात करता हो। इसलिए हमें दाढ़ी और प्रेममें बड़ी समता दिखायी देती है। और यह समता यही नहीं समाप्त होती। ज्यों-ज्यों दाढ़ी समयके पथपर बढ़ती जाती है उसका कालापन दूर हो जाता है और कृष्णपक्ष समाप्त होकर शुक्लपक्षके सुधाकरके समान उसमें प्रकाशकी किरणें फूटती हैं। उसी प्रकार प्रेमपर भी ज्यों-ज्यों पुरातनपनकी मुहर लग जाती है। वह धुलता जाता है और वह लौकिक प्रेमसे उठकर देशप्रेम, विश्वप्रेम भगवद् भक्तिकी ओर उन्मुख होता जाता है। प्रेम भी समय-की गति पाकर उज्ज्वल हो उठता है। यदि वह क्षणिक वासनाका ज्वर न हुआ तो जिस प्रकार, यौवनकी झरबैरीकी झाड़ी सम न दाढ़ी प्रौढ़ावस्थामें रेशमके लच्छेके समान कोमल हो जाती है और उसी प्रकार प्रेम भी लौकिक धरातलसे उठकर ऐश्वरीय, नैसर्गिक वन जाता है।

कुछ ऐसा जान पड़ता है कि दाढ़ी रखनेवालोंकी ईश्वरसे अधिक निकटता होती है। भक्ति-जो प्रेम रसकी ही गाढ़ी चाशनी है—और दाढ़ी का गहरा संबंध है। अच्छी दाढ़ी रखनेवाले जीव भक्त होते हैं। इसमें उन लोगोंको छोड़ दीजिये जो शौकिया दाढ़ी रखते हैं और उसे अनेक कोनोंसे अनेक रूपोंमें काट छाटकर ठीक करते हैं। बाबा नानक बड़े भक्त थे इसमें किसको संदेह हो सकता है। रविबाबू सी० एफ० एंड्रूज, डाक्टर भगवानदासकी ईश्वर-भक्तिमें किसको

सन्देह.हो सकता है। यह अनर्थ नहीं समझना चाहिये कि जो लोग दाढ़ी नहीं रखते वह भक्त नहीं होते। कहनेका तात्पर्य यह है कि दाढ़ी और प्रेममें अवश्य घना सम्बन्ध है। जो लोग स्वाभाविक रूपसे दाढ़ी रखते हैं वह स्वाभाविक भक्त भी होते हैं।

दाढ़ी और प्रेममें एक और सादृश्य है। दाढ़ी आज बना दीजिये कल फिर मौजूद। उसी प्रकार प्रेमभी होता है। प्रेम नहीं मिट सकता। प्रेमकी जड़ ज्यों-ज्यों काटिये वह नये सिरेसे जमने लगता है। अंग्रेजीमें प्रेमको ईश्वर कहा गया है। ईसाई लोग कहा करते हैं 'गाड इज लव' इसलाम धर्मके माननेवाले कहा करते हैं कि दाढ़ी भी अल्लामियाँका नूर है, ज्योति है। दाढ़ी अल्लामियाँ नहीं तो उसकी रोशनी ही सही कुछ तो निकटता है ही। इसीलिये यहां भी दाढ़ी प्रेमहीका स्वरूप हो गयी। स्त्रियोंको दाढ़ी नहीं होती इसीलिये उनके प्रेममें चंचलता होती है।

इसके लिए कोई प्रमाण तो मैं नहीं दे सकता किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि दाढ़ी रख लेनेसे हृदयका प्रेम बाहर निकल पड़ता है। यह महात्मा गांधी और श्रीयुत जिन्ना दाढ़ी रख लेते तो भारतकी समस्या हल हो जाती। दोनोंमें प्रेम हो जाता। सारा झगड़ा मिट जाता। कुछ लोगोंकी धारणा है कि दाढ़ी इसलामका प्रतीक है। यह धारणा मिथ्या है। राजा दशरथ और राजा जनकको तो दाढ़ियाँ थीं ही; जिन लोगोंने देखा है उनका कहना है कि ब्रह्मा को भी दाढ़ी है। इसलिये इसपर मुसलमानोंका आधिपत्य नहीं हो सकता। हाँ यह कहा जा सकता है कि अधिक मुसलमान दाढ़ी रखते हैं इसलिए उनमें अधिक प्रेम है।

जिन लोगोंको प्रेममें असफलता मिली हो वह दाढ़ी रखकर परीक्षा करें कि क्या होता है। बहुत संभव है कि उन्हें सफलता मिल जाय। दाढ़ीका इतना महत्व होते हुए किसी कविने प्रशंसा नहीं की। महाकाव्य तो क्या खंड काव्य भी नहीं; एक गीत नहीं, एक प्रगीत

नहीं, एक सवैया या एक दोहा भी नहीं लिखा। इतने महत्वकी वस्तु और विद्वानों द्वारा इतनी उपेक्षा! भ्रातृभावके सिद्धांतोंके लिए सूलीपर पर चढ़ जानेवाले ईसामसीहने दाढ़ी रखी इसी कारण वह इतने बड़े हो सके। बुद्धका धर्म भारतमें क्यों नहीं पनप सका क्योंकि बोधिसत्व प्राप्त होनेके पश्चात् ही उन्होंने पाटलिपुत्रसे एक नाई बुलवाकर अपनी दाढ़ी बनवा ली। कुछ लोग कहेंगे कि संन्यासियोंके लिए तो दाढ़ी वर्जित है। उन्हें तो संसार ही वर्जित है। मैं तो उन लोगोंकी बातें कर रहा हूँ जो संसार में रहते हैं, संसारके हैं। ऐसे पुरुषोंके बहुतसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जिन्होंने दाढ़ी रखकर कोई असफल हुआ ऐसा उदाहरण कहाँ मिलेगा। यदि ऐसा कोई हो भी तो पहले यह देखना चाहिये कि उसकी दाढ़ी बनावटी तो नहीं है; या उसने जबरदस्ती तो दाढ़ी नहीं रख ली है। मनसे नहीं रखी होगी। पता लगाइये। दाढ़ी बाल ही नहीं बल है और सबल है।

एक पेग

पहले जब लोग उपन्यास आरम्भ करते थे तब लिखा करते थे। सन्ध्या का समय है, खगकुल अपने नीड़में बसेरा लेनेके लिए जा रहा है, गायके खुरोंसे धूल उड़कर आकाशमें छा गयी है और चन्द्रमाकी ज्योति मन्द पड़ गयी है मानों किसी चन्द्रमुखीने आबेरवाँकी चादर ओढ़ ली है इत्यादि। मुझे भी लिखना पड़ता है कि सन्ध्याका समय था, क्योंकि सन्ध्याका ही समय था। पानी बरस चुका था। दिनभर बैठे-बैठे ऐसा जान पड़ता था मानों किसी भारतीय नेताके समान मैं भी अहँमदनगरके किलेमें बन्द हूँ। बाहर निकलनेके लिए हृदयके पर फड़फड़ाने लगे।

काशीमें बाहर निकलनेमें दो विशेषताएँ हैं। या तो निकलिये तो म्युनिसिपलटीकी कृपासे आपके मुखका श्यामवर्ण भी कुछ-कुछ उजला हो जाता है, और पानी बरसनेके बाद निकलिये तो घर लौटनेपर ऐसा जान पड़ता है कि घरके काम-काजके लिए दो दिनोंके लिए

आपको मिट्टी मोल नहीं लेनी पड़ेगी। आपके जूतेके साथ पर्याप्त परिमाणमें वह पहुँच गयी है। दूसरी हालत पहलीसे अच्छी ही समझिये। इसमें तो यही हो सकता है कि बाटा या फ्लेक्स कम्पनी की शरण आपको सालमें कईबार लेनी पड़े। किन्तु-पहलेमें तो आपके फेफड़ेकी उर्वरा भूमिमें रजरूपी ऐ सुगन्धित पुष्प खिल जाते हैं। कि टी० बी० कीटाणु मधुपोंको बरबस आना ही पड़ता है।

जूतेको सँभालते मैं निकल पड़ा। अभी सड़कोंपर बिजलीके लट्टू प्रज्वलित नहीं हुए थे। दिन और रातका सन्धिकाल था। राहमें एक मसजिदमें जोरोंसे अल्लाहो अकबरकी सदा गूँज रही थी। मैंने सोचा कि यह आवश्यक है कि ईश्वरको प्रतिदिन स्मरण कराया जाय कि ईश्वर महान् है। हनुमानजीको भी कहा गया था 'का चुप साध रहा बलवाना'। बिना उन्हें याद दिलाये कि आप बड़े हैं अपनी शक्तिको समझते रहें, नहीं तो इतना काम करना पड़ता है कि उसमें अपनी शक्तिको भूल जायें तो आश्चर्य नहीं। कुछ लोगोंकी राय है कि यह मनुष्यके लिए कहा जाता है कि याद रहे कि ईश्वर महान है। यदि ऐसा कुछ लोगोंका विचार है तो वह अवश्य ही भूल करते हैं। मनुष्य ईश्वरको बड़ा समझे। यह मनुष्यकी विडम्बना है। जिसने ऐटम बमका आविष्कार किया, जिसने मशीनगन बनायी, जिसने पिस्तौल निकाला, जिसने रेडियोकी, खोजकी, जिसने छोटी सी छुरी बनायी, जिससे उस महानके दिए प्राणको एक क्षणमें इस शरीरके बाहर निकाल सकते हैं वह बड़ा कि ईश्वर। इसपर सोच विचारकी आवश्यकता है।

ईश्वरको अपनी दृष्टि बदलनी होगी। मनुष्य अब बहुत बढ़ गया है। वह ईश्वरसे बड़ा हो गया, अब मनुष्य वह नहीं रह गया। वह 'परमेश्वर', 'सुपर गाड' बन गया है।

पानी बरस चुका था इसलिए हवामें कुछ ठंडापन आ गया था जैसे म्युनिसिपिलिटीके सदस्योंमें चुनाव के बाद आ जाता है। मैंने सोचा

कि एकदम गरमागरम चाय की शरण लेनी चाहिये। भले आदमियों-के लिए अब चायको छोड़कर कोई ठिकानेका पेय नहीं रह गया है। प्राचीन काल में ऋषिलोग सोमरसका पान करते थे। उसीका स्थान आजकल चायने ले रखा है। बहुतसे प्राकृतिक चिकित्सावाले कहा करते हैं कि पाचनशक्ति खराब हो जाती है। इसमें हमें विश्वास नहीं है। अंग्रेज लोग बहुत चाय पीते हैं। जिसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने क्या-क्या पचा लिया। जबसे भारतवासियोंने चाय पीना गम्भीरतासे आरम्भ किया यह भी पचाने लगे हैं। और किसीको न विश्वास हो तो कुछ सरकारी विभागोंको देख लें।

मैं संगम रेस्तरांमें चाय पीनेके लिये पहुँचा। पंखेके नीचे कुर्सीपर बैठ गया। सामने एक सुन्दर शीशेकी मेज पड़ी थी। उसमेंसे हरा-हरा रंग वैसाही झलकता था जैसा राधारानीकी परछाई पड़नेपर भगवानके शरीरका रंग हो जाता था। एक कप चायके लिए कहा और इन्तिजार करने लगा। देखा सामने एक कुर्सीपर और एक सज्जन बैठे हुए हैं। उनका शरीर मजनूं का सा था, रङ्ग लैलाकासा, कपड़ा लेबर पार्टीके सदस्योंकासा और बोली ठीक वैसी जैसी सोनारों की भाथीकी होती है। उसके सामने मेजपर दो-तीन प्लेटें खाली पड़ी थीं। एक गिलास भी सामने खाली पड़ी थी। उन्होंने 'ब्याय' से एक पेग लानेको कहा। वह एक छोटीसी गिलासमें पीले रङ्गका तरल पदार्थ सामने लाया। रङ्गसे ऐसा जान पड़ता था मानो किसी कवलके रोगीका पसीना है। जिस गिलासमें वह पुखराजी पानी रखा हुआ था उसमें बारीक बारीक निशान बने थे। उस मनुष्यने इस गिलासको हाथमें लेकर पहले दाहिनी ओर टेढ़ा किया, फिर बाँयी ओर टेढ़ा किया जैसा नाचते समय कलाकार उदय शंकर किया करते हैं। फिर बड़े गौरसे उसे वह देखने लगा और उसी तल्लीनतासे जिससे हरशेल अपनी टेलिसकोपसे युरेनस ग्रहको खोज रहा था। ऐसा ध्यान कमसे कम मैंने कभी नहीं देखा। जान पड़ता था महर्षि पतंजलिका पहला ही सूत्र साका

सामने समुपस्थित है। किसी प्रेमीने अपनी प्रेमिकाकी भौंवोंके घुमावको उतनी सूक्ष्मतासे नहीं देखा होगा, परशुरामने शंकर भगवानके धनुष टूट जाने पर रामको इतनी तीव्र दृष्टिसे नहीं देखा होगा जैसा उपर्युक्त सज्जन उस गिलासकी सूक्ष्म रेखाको देख रहे थे। इसके पश्चात् उन्होंने गिलासकी ओरसे उस ब्वायकी ओर दृष्टि फेरी। उनका सिर गिलासकी ओरसे उस ब्वायकी ओर घूमा जैसे एकाएक बीमारी आते ही लोगोंकी दृष्टि पूजा-पाठकी ओर घूम जाती है। और ऐसे स्वरमें बोले जिसमें रहस्य, उपालंभ, उदासीनता सब मिले हुए थे। बोले यह तो एक पेगसे कम है। इस वाक्यमें वही दृढ़ता थी जो चरचिलके उस वाक्यमें थी कि मैं अंग्रेजी साम्राज्यका विघटन करनेके लिए ब्रिटेनका प्रधान मन्त्री नहीं बना हूँ।

ब्वायने गिलास हाथमें लेकर कहा, एक पेग तो है। हमारे पेग माँगनेवाले महोदयने फिर गिलास अपने बरगदकी जड़के समान उंगलियोंवाले हाथोंमें लेकर एक बार फिर देखा और बोले, नहीं कम है। मेरी चाय अभी बनकर नहीं आयी थी। मैं इस दृश्यको नयनोंसे पान कर रहा था। यदि पेगमें कमी रही होगी तो अधिकसे अधिक पाँच बूँदकी कमी रही होगी। किन्तु अधिकार तो अधिकार है। अपने अधिकारके ऊपर डटे रहना सब लोगोंका काम नहीं होता। कमसे कम हम लोग तो अपने अधिकारोंकी रक्षा करना नहीं जानते न करते हैं। एक शराबी, किन्तु मैं उसे शराबी कैसे कहूँ—जो पाँच बूँद शराबकी कमीके लिए पंद्रह मिनट तक विवाद कर सकता है वह नशेमें तो हो नहीं सकता। या नशेमें भी है तो अपने अधिकारको नहीं भूला है।

ब्वाय सम्भवतः अधिक विवाद करता किन्तु मैनेजरकी अधिकारपूर्ण आज्ञा हुई कि कमी पूरी कर दो। और उस गिलासमें पाँच बूँदके स्थानपर पचास बूँदें मिल गयीं। पाठक! क्या आप उस आनन्दका अनुभव कर सकते हैं जो उसके मुखपर खिल रहा था जब उसे पेग दिया गया। प्रातीचीके अम्बरमें प्रातःकाल उषाका नृत्य फीका जान

पड़ता था। उसके राखके समान चेहरे पर भी विजयकी मुसकानने प्रकाश पैदा कर दी। मानों अबीसीनियामें फारसके गुलाबका उद्यान लगाया गया है।

विजय का उल्लास ऐसा होता है। लोग जब चाँद पर डेरा डालेंगे उनके आनन्दकी सीमा क्या होगी? कुछ कल्पना हम कर सकते हैं। तबतक मेरे पास चाय आ गयी। मैंने सोचा मेरी चाय भी कम होगी तो मैं भी ब्वायसे विवाद करूँगा किन्तु वहाँ तो प्याला इतना छलक रहा था कि सासरमें भी चाय गिर पड़ी थी।

अध्यापक

बहुत दिन हुए इस देशमें एक बड़े बुद्धिमान व्यक्ति पैदा हुए थे। उनका नाम था मनु महाराज। आजकलके हिसाबसे जान पड़ता है कि उनको अवकाश बहुत था। आजकल तो लोगोंको फुरसत नहीं मिलती, किन्तु पहिलेके जमानेमें न सिनेमा था, न रेडियो, न अखबार न कवि सम्मेलन, न संगीत सम्मेलन, न जयंतियाँ। काम ही क्या था। लोग सवेरे-सबेरे सोमरस ताजा-ताजा पीते थे, दिनको जवके हरे-हरे खेतोंमें टहलते थे और रातको देखते थे सप्तर्षि आकाश-गंगामें कब स्नान करने जा रहे हैं और अगस्त अरुधंतिको लेकर क्या गप लड़ा रहे हैं।

इसी फुरसतके समय जब कभी पानी बरसने लगता था तब कहाँ जायँ—तो मनमें जो आता था उन्हें कह डालते थे। उनके चेलेचाटी उन्हें रट लिया करते थे और वह शास्त्र बन जाता था।

ऐसे ही दुर्दिनके समय मनु महाराजने भी एक शास्त्र बना डाला। उन्हें और कुछ नहीं सूझी तो यही बताने लगे कि मनुष्यको क्या करना चाहिये, कब कब हजामत बनानी चाहिये, किससे विवाह करना चाहिये। मनु महाराज ब्राह्मण थे कि नहीं मुझे पता नहीं किन्तु किसी कारण ब्राह्मणोंसे वह असंतुष्ट अवश्य थे। इसलिए उन्होंने कह दिया

कि संसारमें सबसे कठिन काम ब्रह्मणोंको सुपुर्द कर दिया जाय। पीछे कुछ शायद दया आयी तो कुछ फायदेका काम भी साथ ही जोड़ दिया। उन्होंने कह दिया कि ब्राह्मणोंका काम पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, दान लेना, दान देना है। इसमें यज्ञ कराना और दान लेना तो कुछ ठिकानेका काम है बाकी तो सब तंग करनेके लिए ही बताया गया है। दान ले लेनेमें तो कोई हर्ज नहीं है किन्तु दान देना तो जबर्दस्ती है। इसी प्रकार यज्ञ कराने तक तो कोई बात नहीं थोड़ा सा धुआँ लगता है आँखोंमें, किन्तु यज्ञ करना वह भी प्रतिदिन, एक प्रकारसे दंड देना है। वह भी आजकल जब डालडा और स्वस्तिकसे ही अग्निदेवकी पिपासाको शांत करना होगा। इसमें सबसे कठोर दंड जो मनु महाराज सोच सकते थे वह है अध्यापन कार्य। उस युगमें आर्य समाज और जात-पात तोड़क मंडल शायद नहीं थे नहीं तो ऐसा न होने पाता कि क्षत्रिय, वैश्य तथा हरिजनोंको इतना आराम तथा ब्राह्मणोंको इतना कष्ट।

अब तो समय बदल गया और अध्यापक सभी लोग होने लगे। निर्बल ब्राह्मण ही इस यातनाके भोगी नहीं रह गये। अध्यापकका कार्य जो चाहे सो कर सकता है। उसके लिए योग्यता यही होनी चाहिये कि और कोई काम न कर सकता हो। उदाहरणके लिए यदि आपने वकालत पास की और वकालत न चलती हो तो आप अच्छे अध्यापक हो सकते हैं। आपके यहाँ पचास पुश्तोंसे काश्तकारी होती आयी है किन्तु अब खेतमें उपज कम होती है इसलिए आप क्या करें अध्यापकी कीजिये। सीधा उपाय यही है।

पहिले अध्यापक कैसे होते थे सो तो कहना कठिन है। सुनता हूँ कि नित्य सुबह उठकर चेहरेपर सेफ्टीरेजर नहीं रगड़ते थे, छायावादी कवियोंकी भाँति बाल भी बहुत बढ़ाये रहते थे, सूट पहिनने उन्हें आता ही नहीं था। फिर भी पढ़ाने आता था आश्चर्य है। यह भी अभी पता नहीं लगा है कि प्राचीन समयके अध्यापक ट्यूशन करते

थे कि नहीं। और यदि करते थे तो परीक्षामें सिफारिश करके या पर्चा बताके पास करा दिया करते थे कि नहीं।

इस कलिकालमें अध्यापकोंने बड़ी उन्नति की है। कलिकाल तो इस युगको कहना नहीं चाहिये। इसे उन्नतिकाल कहना चाहिये। सभी विभागोंमें उन्नति इस युगमें हुई है। पानीमें, हवामें, भापमें, बिजलीमें। चोरोंने इस युगमें उन्नति की है। पशुओंने उन्नति की है, बन्दर आदमी हो गये। रोगों तकने अपनी उन्नति और प्रसार किया है इसलिये यह युग उन्नतिकाल है। सबके साथ अध्यापकोंने भी उन्नति की है। पहिले युगमें अध्यापक लोग बिना पैसा लिये पढ़ाते थे। किन्तु इस उन्नतिवाले युगमें पैसा केन्द्र है और उसीके चारों ओर लोग नाचते हैं। यदि अध्यापक पैसा न लें तो खाँय क्या? पहिलेके विद्यार्थी भिक्षा माँगकर स्वयं खाते थे अध्यापकको भी देते थे। नहीं तो राज्य देता था। अब भिक्षाके विरोधमें कानून बन गये इसलिये विद्यार्थी कैसे मांगे। इसीलिये अध्यापकोंको पैसा मिलता है।

पैसेका प्रश्न आ गया इसलिये एकबात यह भी कह देना चाहिये कि अपने युगका राज्यका शासन विभाग शिक्षाका बड़ा प्रेमी है इसलिये अध्यापकोंसे भी उसे बहुत प्रेम है। अध्यापकोंके लिये उसने विद्यालय खोल दिये हैं। कैसा भी मूर्ख हो दस महीनेमें वहाँ अध्यापक बना दिया जाता है। और फिर उसे एक सौ बीस रुपये मासिक वेतन मिलने लगता है। एक सो बीस रुपये मासिक, चार रुपये रोज। मुझे तो समझमें नहीं आता कि चार रुपये रोज कोई क्या करता होगा। इतना अधिक तो एक प्रकार रुपयेकी बरबादी है। अध्यापकको सिगरेट पीना नहीं है, पान खाना नहीं है, सिरमें तेल लगाना नहीं। तमाशा सिनेमा देखना नहीं। उसका जीवन तो सादा होना चाहिये बिलकुल आदर्श। रोटी, बिना घीकी दाल, नेनुएकी तरकारी। इसके लिए दो आने प्रति दिन बहुत है। आशा है स्वराजी सरकार द्वारा इसपर विचार होगा। जब मंत्री लोग केवल बारह सौ रुपये मासिक वेतनपर

अपना गुजरकर लेते हैं तब अध्यापकोंके लिये बारह रुपये मासिक बहुत हैं। उन्हें स्वावलम्बी होना चाहिये। कपड़े स्वयं धोना चाहिये, हजामत स्वयं बनानी चाहिये, कपड़े स्वयं सीना भी चाहिये। विद्यार्थियोंपर इसका स्वस्थ प्रभाव पड़ेगा। भोजन रहन सादा रहनेपर बीमार कभी पड़ नहीं सकता। अध्यापकोंको ब्रह्मचारी रहना ही चाहिये। शादी विवाह, कुटुम्ब-परिवारके झंझटसे उसे क्या काम है।

हमारे देशके अध्यापक तीन वर्गों में विभक्त हैं। एक विश्वविद्यालय के अध्यापक जो बहुधा सूटसे सुसज्जित रहते हैं। यह अपने देशी विश्वविद्यालयोंकी डिगरियोंसे संतुष्ट नहीं रहते। यूरोप जानेके लिए अधिक उत्सुक रहते हैं। विश्वविद्यालयके अधिकारी भी यूरोपसे लौटनेवालोंकी कदर अधिक करते हैं क्योंकि वह स्वयं भारतीय विश्वविद्यालयोंमें पढ़ चुके होते हैं और जानते हैं कि यहाँ पढ़ाई कुछ नहीं होती, यूरोपमें पढ़ाई अच्छी होती है। विश्वविद्यालयके अध्यापकोंकी दिनचर्या यह होती है कि वह सिनेट, सिंडिकेट, कौंसिलके चुनावमें लड़नेकी योजना बनाते रहते हैं और सुचारुरूपसे कार्य करने के लिये पार्टियाँ निर्माण करते हैं। वह जानते हैं कि संगठन ठीक हो जायगा तो पढ़ाई-लिखाई तो अपने आप ठीक हो जायगी। 'संघे शक्ति कलौयुगे' के सिद्धांतको वह ठीक समझते हैं। थोड़ा बहुत समय पढ़ानेमें भी यह लगा देते हैं यदि वोट एकत्र करनेके बाद कुछ बच जाता है।

दूसरा वर्ग है सेकेंडरी स्कूल और कालेजके अध्यापकोंका। इन्हें आप झट पहिचान जाते हैं। बन्द गलेका कोट इनका बैज है। चेहरेसे जान पड़ता है कि अभी कहींसे मार खाकर चले आ रहे हैं। स्कूलमें कापियाँ शुद्ध करते हैं और इसके पश्चात् जो समय मिल जाता है ट्यूशन करने तथा सबेरे शाम मैनेजरकी खुशामद करनेमें लगाते हैं। पढ़ानेसे अधिक महत्वका कार्य मैनेजरके यहाँ हाजिरी देना है। और दूसरे अध्यापकोंके विरुद्ध कुछ कहना होता है नहीं तो वेतन बढ़नेमें कुछ दिक्कत होती है। इन्होंने जो कुछ स्कूल कालेजमें पढ़ा उसके बाद

पढ़ना ठीक नहीं समझते। और उसके बाद पढ़ना रही क्या जाता है। दैनिक अखबारवालोंने सुविधा कर दी है कि अपने दफ्तरके बाहर प्रतिदिन अखबार चिपकवा देते हैं। यह लोग स्कूल आते-जाते उसीसे समाचारोंके शीर्षक पढ़ लेते हैं। उतना ज्ञान पर्याप्त है। क्योंकि राबिन-सन क्रूसो तथा के० पी० बसु पढ़ानेके लिये विशेष ज्ञानकी क्या आवश्यकता है।

तीसरा वर्ग म्युनिसपलटी तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डके अध्यापकोंका है। जिनकी देशभक्ति जगतमें विख्यात है। डिस्ट्रिक्ट बोर्डके चुनावमें यदि यह हाथ न बटाएँ तो चुनाव ठीक हो ही नहीं सकता। म्युनिसपलटी-के मेंबरको अपने स्थानके लिये इन्हींपर निर्भर रहना पड़ता है। यह धनी होते हैं क्योंकि इनका वेतन बहुधा छठें महीने मिला करता है। म्युनिसपलटीके अध्यापक मेंबरों के घर एक बार प्रतिदिन जाना अपना सनातन धर्म समझते हैं।

अध्यापक वर्गमें एक और विशेपता है। विश्वविद्यालयके अध्यापक स्कूलके अध्यापकोंको समझते हैं कि हेय हैं, स्कूलके अध्यापक म्युनिस-पलटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्डके अध्यापकोंको समझते हैं कि नीच हैं। इसके अतिरिक्त प्राइमरी स्कूलोंके अध्यापक अंग्रेजी स्कूलके अध्यापकोंको समझते हैं कि यह लोग केवल भारी-भारी तनखाहें पाते हैं काम कुछ नहीं करते। स्कूलवाले युनिवर्सिटीके अध्यापकोंको समझते हैं कि यह मुफ्तका वेतन पाते हैं।

चाहे कुछ हो अध्यापक कहींका हो, किसी वर्गका हो एक विचित्र जन्तु है जो समझता है कि हमारे बराबर बुद्धि किसीमें नहीं है और जो सदा समझते हैं कि हमारे साथ कभी न्याय नहीं होता। यह वर्ग बीसवीं सदीका अभिशाप है।

प्रभुजी तुम चंदन हम पानी

साम्यवादका युग आयेगा या नहीं मैं नहीं कह सकता। ज्योतिषका मुझे केवल इतना ही ज्ञान है कि बुधकी दशा हो तो पन्ना पहनिये, शनिकी हो तो नीलम, राहूकी हो तो लाजवर्त और केतुकी हो तो लहसुनिया। नेपचून, यूरेनस और प्लूटोकी दशा या महादशा हो तब कौन रत्न धारण करना चाहिए इसका पता अभी नहीं है। इसलिए मैं यह कह नहीं सकता कि साम्यवादी शासन कब होगा और होगा कि नहीं। किन्तु साम्यवादका एक सिद्धान्त फैल गया। नौकर अब नहीं मिलते। नौकरका अर्थ घरपर काम-काज करनेवालोंसे है। यों तो सम्पादक या अध्यापक या दफ्तरोंमें काम करनेवाले उतने मिल जाते हैं जितने श्मशानपर कौवे अथवा जटायुके पवित्र वंशज।

किसी युगमें नौकर रखना बड़े आदमी होने या रईसीका चिन्ह समझा जाता था। अब नौकर रखना चतुराई, समझदारी, भले-आदमीयत, उदारता, सहनशीलता, अहिंसा और शिष्टता गुणोंकी परीक्षा है। जिन लोगोंमें यह गुण पर्याप्त मात्रामें हों वही नौकर रख सकते हैं। नौकर रखना कला है। यह न समझना चाहिये कि पैसे पास हों तो नौकर रख लिया जा सकता है। जो लोग अभी इस

भ्रममें हों उन्हें इस मृगतृष्णासे सावधान हो जाना चाहिये। जिस प्रकार छंदः शास्त्र पढ़कर कोई कालिदास नहीं हो सकता, बाँसुरी रखकर बंशीधर नहीं हो सकता, मूँछ मुँड़ाकर और सदरी पहनकर जवाहरलाल नहीं हो सकता और अपनेसे अधिक अवस्थाकी महिलासे विवाह करनेसे शेक्सपियर नहीं हो सकता, उसी भाँति पासबुकके बलपर नौकर नहीं रखा जा सकता। इसका अनुभव बहुत लोगोंको होगा। मेरे मित्र तथा सहपाठी तजम्मुल हुसेन लखनऊमें डिप्टी कलक्टर होकर गये। वहाँ नया नौकर उन्हें रखना पड़ा। कोई नौकर दो दिनोंके बाद चला गया, कोई तीन दिनोंके बाद। वह बहुत घबड़ाये। उनकी पत्नीको सब काम करनेका अभ्यास नहीं था? फिर चिलम भरना, तमाखू चढ़ाना कौन करता। जो आदमी उन्हें मिला था उसने एकाध काम संभाला। किन्तु उसके रंग ढङ्गसे पता चला कि उसे यह सब अच्छा नहीं लगता था। हुसेन साहबने एक मित्रसे शिकायत की। कहा कोई ऐसा नौकर दिलाइये जो टिकाऊ हो। मित्रने पूछा—बात क्या है। कोई बात ऐसी न थी। फिर मित्रने कहा—आप नौकरको क्या कहकर पुकारते हैं। डिप्टी साहबने बतलाया नाम लेकर पुकारता हूँ और क्या बाबा या दादा कहकर पुकारा जाय। मित्रने कहा—यही कारण है। लखनऊमें नौकरोंको नवाब साहब कहकर पुकारा जाता है। मित्रने नौकर भी खोजकर भेजा। डिप्टी साहब उसे नवाब साहब कहकर पुकारने लगे। नवाब साहब जूता साफ कर दीजिये; नवाब साहब बंधना मांज दीजिये; नवाब साहब बीबी साहबा के पाजामेमें साबुन लगा दीजिये। यह नौकर कहीं नहीं भागा। जबतक डिप्टी साहब लखनऊमें रहे उसने उनका साथ दिया।

एक बार रोटरी कलबमें प्रस्ताव पास किया गया कि नौकरोंको आप कहकर पुकारा जाय। इसमें कोई हानि नहीं है; अंग्रेज अपने बटलरको भी सम्मानके साथ पुकारता है।

जो लोग पुनर्जन्म मानते हैं उन्हें यह जानना चाहिये कि उस जन्ममें जिसने पुण्यकर्म किया है उसीको अच्छा नौकर मिल सकता है। मेरा विश्वास पुनर्जन्ममें है और इससे मैं इतना कह सकता हूँ कि पहले जमानेमें मैंने कोई अच्छा काम नहीं किया। सम्भवतः गत जन्ममें मरते समय बछियाकी पूँछ भी नहीं पकड़ी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि मुझे इस जन्ममें कभी अच्छा नौकर नहीं मिला। जहाँ तक मैंने हिसाब लगाया है आजतक कुल मिलाकर पैंतालिस नौकर मैंने समय-समयपर रखे। गणित कमजोर होनेके कारण दो चारका अन्तर इसमें हो सकता है किन्तु अधिकका नहीं। इस संख्यामें मुझे नाना प्रकारके नौकरोंका अनुभव हुआ। किसी समय मैंने समझा था कि मैंने कुछ साहित्य पढ़ा है, थोड़ी बुद्धि भी है, अल्प मात्रामें ही सही कुछ कल्पनाशक्ति भी है; किन्तु अब मुझे विश्वास हो गया है कि मैं सदा भ्रममें रहा और इसके कारण हैं नौकर, जो समय समयपर मेरे यहां कार्य करते रहे। कुछ तो इनमें इतने बुद्धिमान थे जिनकी तुलना यदि बृहस्पतिका अपमान न हो तो उन्हींसे की जा सकती है। इनमें कोई मूर्ख भी था कहना कठिन है। हम लोगोंके मानदण्डसे मूर्ख हो भी किन्तु वास्तवमें था नहीं।

बहुत दिनोंकी बात है। मेरी दादी जीवित थीं। रविवारका दिन था। उसी दिन नया नौकर आया। पन्द्रह सालकी अवस्था रही होगी। आते ही उसने बैठकमें झाड़ू लगायी। फिर रातके दो पराठे थे उनका जलपान किया। मेरी दादीको किसी विद्वान् ज्योतिषीने बता रखा था कि रविवारके दिन सूर्य भगवानको देखकर बारह लाल फूल चढ़ाया कीजिये। आपके पुत्र, पौत्र दीर्घजीवी होंगे। उस नौकरसे उन्होंने कहा जाकर बाजारसे बारह लाल फूल लाओ। पैसे घरमें थे नहीं, एक रुपया उसे दिया गया। वह फूल लाने गया। तबसे आजतक वह नहीं लौटा। जैसे विन्ध्य पर्वत अगस्त्य महाराजकी बाट जोह रहा है उसी भांति हमलोग उसकी बाट जोह रहे हैं। कुछ ही दिनों की बात है कि एक

नौकर आया। उन दिनों मैं आप छुरेसे दाढ़ी बनाया करता था। जर्मनीका क्रप छुरा संसारमें सबसे अच्छा समझा जाता था। एक दिन सबेरे जब चेहरेपर साबुन लगाकर ब्रशसे रगड़कर पर्याप्त फेन उत्पन्न कर लिया तब छुरा चलाना आरम्भ किया। एक इञ्चका दशांश भी नहीं चला था कि जान पड़ा आरीसे छील रहा हूँ। नौकरसे पूछा कि छूरेको छुआ था उसने उत्तर दिया, नहीं केवल दो दातुनें उससे छीलीं थीं। मैंने उससे कहा, दाढ़ी बनानेके लिए है कि दातुन छीलनेके लिये। अपनी बोलीमें उसने उत्तर दिया कि मैंने क्या समझा था कि आपकी दाढ़ीके बाल दातुनसे भी कड़े होंगे। जब दातुन छिल गयी तब बाल नहीं कटेंगे! उस दिनसे मैंने सेफ्टी छुरेका प्रयोग करना आरम्भ किया। मनमें उसके तर्क पर प्रसन्न हुआ। अरस्तू यदि जीते होते तो इसे अपना गुरु बनाते इसमें सन्देह किसीको नहीं हो सकता। कम से कम मुझे नहीं है। एक और घटना बता दूँ। एक मेरे मित्र हैं, इस समय वकालत करते हैं। उन्होंने बड़ी कृपा करके मुझे एक नौकर प्रदान किया। गर्मीका महीना था, मैं बाहरसे आया और पानी पीनेको मांगा। पानी पीकर चारपाईके पास मैंने गिलास रख दिया और लेट गया। थोड़ी ही देर बाद एक सज्जन मिलने आये। मैं नीचे जाने ही वाला था तबसे उन्होंने भी पीनेको पानी मांगा। नौकर महाराजने वही गिलास उठाया और पानी लेकर नीचे चले। मेरी दृष्टि पड़ गयी मैंने कहा, इस गिलासमें तो अभी मैंने पानी पिया था, जूठा है। उसने निःसंकोच उत्तर दिया, वह तो बाहरके आदमी हैं, कोई घरके हैं। मैंने गिलास बदलवा दिया, यद्यपि यह गुण उसमें था कि अपने परायेका भेद समझ सकता था और इससे भविष्यमें लाभ होनेकी सम्भावना थी किन्तु दूसरे दिन मैंने उसे नमस्कार किया। मेरे पास वाटरमैनकी एक फाउण्टेन पेन थी जिसमें दो सोनेके छल्ले लगे थे, उसे उसने मेरे पूछे बिना अपनेको उपहारस्वरूप भेंट किया और चलता बना।

यदि कोई नौकर जाते समय आपकी सब वस्तुएँ ज्योंकी त्यों छोड़ देता है तो अवश्य ही उसका मस्तिष्क विकृत है। किसी डाक्टरको परीक्षा करनी चाहिये। जब नौकर घर जाता है और लौटकर घर आ जाता है या तीन आने सेर बिकनेवाली भिंडीका हिसाब घरपर तीन आने ही बताता है तब तो समझिये नैतिकताकी परिभाषामें परिवर्तन करना आवश्यक होगा।

मुझसे जब कोई नौकर बीस रुपये और भोजन काम करनेके लिए माँगता है तब मैं बजटमें तीस रुपये और भोजन समझता हूँ। यदि तरकारी तथा नित्यके बाजारके कार्यमें उसने दस रुपये लिये तो बहुत अधिक नहीं लिया। चलते समय वह इस कमीको पूरा कर लेगा, यदि आपने कहीं सोनेके बटन या कुरतेमें वेतनका रुपया या श्रीमतीजीके कानका टप इधर-उधर रख दिया है।

इसलिए मैं तो नौकरको चन्दन और अपनेको पानी समझता हूँ। आधार मेरा अपना अवश्य है किन्तु सारा मूल्य उन्हींका है, गुण, रस, गन्ध सब उन्हींका है। मालिक तो उनकी सफलताका माध्यम है।

आजका ताजा अखबार

इलाहाबादी अकबरने कहा था—'खींचो न कमानोंको न तलवार निकालो, जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।' आजकल जब संसारमें सबसे बड़ा युद्ध हो रहा है सब लोग जो लड़ाई में नहीं हैं उनके लिए एक ही सहारा है, अखबार। यहाँ बैठे-बैठे उड़नबमोंकी चाल, बरलिन पर बमोंका गिरना, रोमका घिर जाना और पेरिसपर टंकोंका बढ़ाव देख लेते हैं। मेरा तो यह हाल है कि सबेरे जलपान तैयार हुआ, चायका प्याला खड़का कि अखबारकी प्यास जाग उठी। कहीं देर हुई तो दो-तीन बार नौकरको पुकारता हूँ। बैठकके किवाड़ खोल कर झाँकता हूँ। यह सभी भलेमानुसों का हाल होगा।

समाचारपत्र आया। इधर सोंधे-सोंधे हलवेकी महक उधर ताजा छपे हुए अखबारकी स्याहीकी महँक, एक नाकके दाहिने नथुनेसे एक नाकके बायें नथुनेसे दिमागमें घुसने लगती है। किन्तु दोनों भूल जाते हैं। चायकी एक एक घूँट गलेके नीचे उतर रही है, एक-एक कौर जलपान पेटमें जा रहा है और आँख अखबारके पन्नोंपर दौड़ रही है। बड़े-बड़े टाइपोंपर दृष्टि घूम रही है कि जर्मन सेना कितनी दूर खदेड़ी गयी, जापानियोंके कितने सिपाही खेत रहे।

कभी-कभी सोचता हूँ कि अखबार बन्द हो जाय तो क्या हाल होगा। यद्यपि रेडियो है और उससे संसार भरका हाल हम सुन लेते हैं किन्तु उसका और आनन्द है और समाचार-पत्रोंका कुछ और

गरदनको बाँधकर भूला भूल गया क्योंकि इसकी प्रेमिकाने उसके चार
पत्रोंका उत्तर नहीं दिया, किन बड़े बड़े आदमियोंने राज्यपाल साहबके
यहाँ दावत खायी; देशमें कितनी सभाएँ हुईं और कितने भाषण
हुए। कहाँतक गिनाया जाय। अखबार द्वारा तो देश ही नहीं विदेश
की भी कितनी बातोंकी झाँकी मिल जाती है।

लड़ाईके कारण कागजकी बेहद कमी हो गयी है। सभी पत्रोंमें
पन्ने कम हो गये हैं। कईने तो लम्बाई-चौड़ाईमें भी कमी कर दी
है। डर था कि यदि यही हाल रहा तो कुछ दिनोंमें बिस्कुटके बराबर
अखबार निकलेंगे। आनन्द की बात है कि कुसमय नहीं आने पाया
समाचार-पत्रोंको कागज मिलने लगे और भगवानकी ऐसी ही कृपा
बनी रहेगी तो लड़ाई भर मिलता रहेगा। लड़ाई समाप्त होनेपर तो
समाचार-पत्रोंका भी कायापलट हो जायगा इसमें सन्देह नहीं।

आजका ताजा अखबार हमारे सामने है। पहले ही दृष्टि पड़ी
एक-एक इञ्च मोटे अक्षरोंपर। रूसी लोग आस्ट्रियामें घुस आये
चलिये मनको सन्तोष हुआ। शीघ्र ही युद्धकी समाप्ति होगी। मलाई
परसे कंट्रोल उठेगा, रातको सोते समय आध पाव मलाई खानेका
अभ्यास हो गया है। जबसे मलाई रबड़ीपर कंट्रोल हो गया त्रिन
मलाई रातको नींद नहीं आती है। सबेरे चायके साथ टोस्ट मिलेगा
सोचते-सोचते कल्पना कहाँसे कहाँ पहुँच गयी। एक नये स्वर्गका
सुख स्वप्न देखने लगा।

सामने ही एक चित्र छपा दिखायी दे रहा है। आज रविवार
संस्करण है न। चित्रके नीचे कुछ लिखा अवश्य है परंतु चित्रमें क्या

है वह जान नहीं पड़ता। यों तो चित्र इतनी सुन्दरतासे छपा है कि आपके विचारके अनुसार वही चित्र बैल भी जान पड़ता है, हवाई जहाज भी और उलटके देखा जाय तो ऐसा जान पड़ता है कि कोई सिनेमा अभिनेत्री लेटी हुई है। एक ही चित्र इस सफाईसे छपा है कि जिसकी जो भावना हो उसे उसी रूपमें देख ले। यह प्रगतिशील कला है इसमें सन्देह नहीं। भीतर तीन चार चित्र और हैं। एक तो है इङ्गलैंडमें युवतियाँ सैनिकोंके मोजे बुन रही हैं। कैसे सुन्दर-सुन्दर मुखड़े हैं, स्वास्थ्यकी मूर्तियाँ हैं। सबके चेहरे पर मुसकान खेल रही है, नेत्रोंकी कोरोंसे मद टपक रहा है। तीन और चित्र हैं। सिनेमा अभिनेत्रियोंके। कितनोंके लिए तो अखबारका मूल्य मिल गया।

उसीके साथ एक लेख भी है। एक खेलकी आलोचना है। और उसीके बगलमें सिनेमापर लेख है। यों तो आजकल जब अखबार आता है तब युद्ध का समाचार पढ़नेके बाद मैं 'वांटेड' पढ़ा करता हूँ—किन्तु आज सिनेमापर ही पढ़ डाला। पता चला कि ऐसा फिल्म तो कभी संसारमें बना ही नहीं। दिल्लीमें यह डेढ़ सौ हफ्ते चला, कलकत्तेमें तीन सौ हफ्ते और इसी प्रकार भारतके बड़े-बड़े नगरोंमें चलता रहा।

सिनेमाकी आलोचना पढ़नेके बाद आवश्यकताओंवाले विज्ञापन देखने लगा। सब सूखे, नीरस विज्ञापन थे। वेतन, योग्यता, उम्र यही सब गिनाये गये थे। कोई विशेष बात नहीं। हाँ विवाह विज्ञापन अवश्य बड़े मनोरंजक थे। कोई छप्पन वर्षका है किन्तु अभी पूरा युवकके समान है आमदनी भी खासी है। विवाह करना चाहता है क्योंकि पहली श्रीमतीजी बहरी हैं सुनायी नहीं देता। कोई इसलिये विवाहका इच्छुक है कि पहली स्त्री अंग्रेजी नहीं जानती और उन्हें पार्टियोंमें बहुत जाना पड़ता है, उसे कैसे ले जायँ। यों तो बहुतसे विवाहके विज्ञापन थे। सब साधारण। एक और विज्ञापन आकर्षक था। एक

कन्या की अवस्था पैंतीस सालकी थी। एम० ए०, एल-एल बी० पास। विवाहके लिए योग्य वर चाहिये। 'वांटेड' वाले विज्ञापन सभी पत्रोंके आवश्यक अंग हैं। बहुतसे लोग तो यदि यह न हो तो पत्रही न खरीदें। और विवाह वाले विज्ञापन तो बहुतोंका मनोरंजन करते हैं। इसे केवल वही नहीं पढ़ते जिन्हें विवाह करना होता है। किन्तु वह लोग भी पढ़ते हैं जिनका विवाह हुए बीसों साल बीत गये।

फिर और विज्ञापन देखने लगा। बहुतसे पत्रोंमें तो विज्ञापन रहता है। सम्पादक महोदय, आपने बड़ा अच्छा किया है जो अपने पत्रमें लेख, कहानियाँ और कविताएँ छापते हैं। एक विज्ञापन बड़े कामका आपके पत्रमें मुझे मिला। एक दवा है जिसके पीनेसे मनुष्य तीन सौ सालतक जी सकता है। उसपर मैंने टिकका निशान लगा लिया है। किन्तु फिर सोचता हूँ—इतने साल जीकर क्या करूँगा। सब मित्र, संगी-साथी तो दूसरे संसारका रास्ता लेंगे अकेले मैं यहाँ रहकर क्या करूँगा। इतना पैसा नहीं कि सबको लेकर पिला दूँ। यदि कोई महाजन इतना उपकारकर दे कि यह दवा खरीदकर प्रत्येक भारत-वासीको पिला दे तब तो भारतवासी तीन सौ सालके लिए अमर हो जायँ। इस पत्रमें ज्योतिषियोंकी भविष्यवाणी नहीं छपी है। यह एक कमी अवश्य खटकती है। फिर इस अखबारके पढ़नेवाले चांदीका फाटका कैसे खेलते होंगे।

आज पत्रमें एक बातपर और निगाह पड़ी। एक बहुत लम्बा चौड़ा लेख स्वास्थ्यपर दिखाई पड़ा। इसके पहले भी स्वास्थ्यपर कई लेख पढ़नेका अवसर मिला है। वही बात घूम-घूमकर पढ़नेमें आती हैं। नीबूका रस पियो, संतरे, अंगूर, सेब खाओ यदि स्वस्थ रहना हो तो उपवास करो। दूध पीयो, फल खाओ। यही आज भी पढ़ रहा हूँ। सोना-चांदी और कोहकाफकी परियां तो सपनेमें कभी दिखायी भी देती हैं। फल तो सपनेमें भी दिखायी नहीं देता। सब लोग यही सलाह देते हैं कि फल खाओ। फलका यह हाल। एक बात और देखनेमें

आयी। स्वास्थ्यपर लम्बे-लम्बे लेख लिखनेवाले डाक्टर से अधिक तो साधारण लोग हैं। डाक्टरोंसे अधिक ज्ञान रोगों तथा औषधियों का जान पड़ता है सब लोगोंको रहता है। सब लोग सब रोगोंकी दवा याद किये बैठे रहते हैं। पता नहीं समाचार-पत्रोंमें स्वास्थ्यपर जो लेख रहते हैं उनका कोई प्रयोग करता है कि नहीं। शायद प्रयोग करनेवाले फिर लेख लिखने योग्य नहीं रह जाते।

डाक्टर लोग स्वास्थ्यपर लेख नहीं लिखते। उन्हें समय ही कहाँ। मरीज देखना, दवा लिखना फिर रोगियोंके घर जाना। जो बड़े डाक्टर हैं उनका तो यों समय बीता और जो नये हैं इनका समय यह सोचनेमें कटता है कि किस प्रकार रोगी हमारे पास आयें। और यदि डाक्टर लोग सब बातें पत्रोंमें लिखकर छाप दिया करें तो रोगी कौन इनके पास आये। अपने पाँवमें जानबूझकर कौन कुल्हाड़ी मार सकता है।

एक कालममें देखता हूँ कि छोटे-छोटे नोट लिखे हुए हैं। इन नोटोंमें लोगोंकी चुटकियाँ ली गयी हैं; नेताओंपर और सार्वजनिक कार्यकर्ताओं पर फबतियाँ कसी गयी हैं। समाचारपत्रोंने गाली देनेका यह नया ढंग निकाला है। सभ्य लोग किसीसे रंज भी हो जायं तो यों गाली नहीं दे सकते। परन्तु अखबारवालोंने यह तरकीब सोच निकाली है। जिसे जो चाहिये कह डालिये पढ़नेवाले उसका रस लेते हैं और बीतती है जिनके ऊपर बौछार पड़ती है। हँसी-हँसीमें खबर लेनेका इससे उत्तम ढंग सोचा नहीं जा सकता। कभी यदि सीमासे बाहर भी चले गये तो क्या हुआ हँसी थी। अभी अखबारोंने यह ढंग अपनाया है। कोई 'चायके प्यालेपर' कुछ कहता है तो कोई 'भंगकी तरंग' में कुछ कहता है। कोई नशेकी झोंकमें तो कोई धरहरेपर चढ़कर। अंग्रेजी हिन्दी, उर्दू सभी इसकी आड़में बहुत कुछ कह जाते हैं। जिसने पहले-पहले यह सोचा वह बहुत ही बुद्धिमान रहा होगा इसमें सन्देह नहीं।

जो पत्र हमारे सामने है उसमें एक कारटून भी बना है। यह भी गाली देनेका बड़ा शिष्ट ढंग है। परन्तु इस चित्रमें जिनका चेहरा

गधेका बनाया गया है उसका चेहरा तो सचमुच ही गधेका सा है। उसकी शकल तो कुछ ऐसी बनानी चाहिये थी कि कारटून जान पड़े। वह तो उसकी फोटो-सी हो गयी। यह कमी रह गयी। सम्पादक महोदयको अपने चित्रकारसे कहना चाहिये कि फोटो न खींचा करें, कारटून बनाया करें। इस रूपमें भी संसारके बड़ेसे बड़े आदमीकी खबर ली जा सकती है। समाचार-पत्रोंमें इस ढंगसे जो कुछ कहा जाय उसे कोई बुरा भी नहीं मानता। कारटून बनानेवाले कमाते भी बहुत हैं। और आज तो जिस अखबारमें कारटून न रहे वह वैसा ही फीका लगता है जैसे बिना नमककी दाल।

नये फैशनके अनुसार इस अखबारमें भी कहानी देख रहा हूँ। हर हफ्ते कहानी पढ़ता हूँ—आज भी देखा। बस प्रेम ही प्रेम है। आज भारतवर्षमें जान पड़ता है प्रेम और रोमांसको छोड़कर और कुछ है ही नहीं। कालेजके रास्तेमें बस्ता ले जाते हुए देखा। प्रेमकी नदी उमड़ पड़ी। डेढ़ सालतक पत्र-व्यवहार होता रहा। वह एक जातिकी थी, प्रेमी महोदय दूसरी बिरादरी के थे। माता पिताने विवाहकी अनुमति नहीं दी। लड़कीका विवाह दूसरेके साथ हो गया। प्रेमी महोदय उसकी बेवफाईपर घड़ों आँसू बहाते और समाजको गालियाँ देते हुए नदीकी छातीका अथवा रेलकी पटरीका सहारा लेते हैं। अधिकांश तो आत्महत्या करनेकी कल्पना करते हैं किन्तु कर नहीं पाते और कविता लिखने लगते हैं। यही कथा पढ़ते-पढ़ते अबतो कहानीका नाम देखते ही सिरमें पीड़ा होने लगती है। परन्तु छपेगी कहानी अवश्य। जैसे बिना अंजनके कोई रेलगाड़ी नहीं चल सकती वैसे ही विना कहानीके अखबार नहीं चल सकता।

कहानी लेखकोंको सम्भवतः यह नहीं ज्ञात है कि देशमें और समाजमें और भी बातें हो रही हैं। मगर प्रेम तो अंधा होता है फिर प्रेमीको और कुछ कैसे दिखायी दे। डाक्टरोंको कोई ठीक चश्मा या दवा बनानी चाहिये।

सबसे अन्तमें अग्रलेख पढ़ता हूँ—और सम्पादकके विचार। क्योंकि उसे अनावश्यक समझता हूँ। समय नहीं मिले तो छोड़ भी सकता हूँ। क्योंकि मैंने सुना है कि सम्पादक लोग अपना मत या अपना विचार नहीं प्रकट करते। लोग कहते हैं जो समाचार-पत्रके मालिकका विचार होता है उसीको सम्पादक लिखता है। यदि यह बात ठीक है तब तो अग्रलेख पढ़नेकी आवश्यकता ही नहीं है। प्रत्येक बातपर मैं अपना मत बना लिया करता हूँ। देखना चाहता हूँ कि सम्पादकका इस विषयपर क्या मत है। जब वह मिलता ही नहीं तब अग्रलेख पढ़नेसे क्या लाभ।?

समाचार तो सब मिला ही करते हैं। किन्तु आज भी हृदयको बड़ा धक्का लगा। मैं अखबामे जो कुछ छपता है उसपर पूर्ण विश्वास करता हूँ। इसीसे आज मुझे बड़ा दुख हुआ। कल मैंने इस पत्रमें एक समाचार पढ़ा था। एक बड़े रुपयेवाले की मृत्युके सबंधमें। वह रिश्तेमें मेरे नाना होते थे और उन्हें कोई सन्तान न थी। उनका सारा धन मुझे मिल जाता। आज समाचार छपा है कि वह खबर गलत थी। वह सज्जन बिल्कुल तन्दुरुस्त हैं। इससे मुझे जितना दुख हुआ होगा उसे वही लोग समझ सकते हैं जिन्हें इस प्रकार धन मिलनेवाला हो। जान पड़ता है पत्रोंमें झूठे समाचार भी छप जाया करते हैं। अभी तक हम समाचारोंको ईश्वर वाक्य समझते थे।

फिर भी छः पैसे दो आनेमें कितना मनोरंजन हो जाता है और संसार भरका हाल, नेताओंके सन्देश, उनकी महत्ता, बढ़िया-बढ़िया दवाइयोंका पता, अभिनेत्रियोंके चित्र सभी मिल जाते हैं घरं बैठे और क्या चाहिये। हाँ, कभी-कभी टाइप इतना महीन रहता है कि चश्मेवालेसे भी मित्रता करनी पड़ती है। आशा है सम्पादक लोग इसका ध्यान रखेंगे। एक बात और। कविताएँ छापा कीजिये तो केवल वियोगकी नहीं। कभी-कभी मिलनकी भी। हँसीका सामान भी कुछ चाहिये। जीवनभर रोना ही नहीं।

१४ अक्तूबर

आज सबेरे नींद खुल गयी एकाएक। उत्साह और उल्लास इतना भर गया था, जैसी वार-फण्डकी थैली। सबेरे उठकर दाढ़ी बनायी, नये ब्लेडसे। फिर साबुनसे रगड़ रगड़कर स्नान किया। आज मित्र राष्ट्रोंकी विजय होगी। हिटलरको पकड़कर अटलांटिकके सुदूर किसी द्वीपके किसी माँदमें बन्द किया जायगा। पृथ्वीपर सुखका डंका बजेगा। आज शांति हो जायगी। इतने दिनोंका युद्ध आज बन्द हो जायगा।

मुझे पूर्ण विश्वास था कि आज युद्ध बन्द हो जायगा। लामाने कहा था। मामाका प्यार, गामाकी कुश्ती और लामाकी बातें बड़ी सच्ची होती हैं। फिर कैसे अविश्वास करता। मैं दूकानदारोंकी बातका विश्वास कर लेता हूँ, जब वह कहते हैं कि धोती नहीं है, या गेहूँ नहीं है, या रेजगारी नहीं है, स्कूलोंके संचालकों की बातें सत्य समझता हूँ

जब वह कहते हैं कि बजटमें घाटा है, तब मैं भला लामाकी बातोंपर विश्वास क्यों न करता।

फिर यह समाचार तो पत्रोंमें छपा था। रायटर तथा असोसिएटेड प्रेस ऐसी आदरणीय संस्थाएं फिर सेंसरकी पवित्र कैंची और बड़े-बड़े योग्य सम्पादकोंकी दृष्टिसे होकर समाचार छपे और उसपर अविश्वास करूँ। अपनेको मूर्खोंकी सूचीमें लिखानेसे बचाता हूँ और लोगोंने जो समझा हो, मैंने तो यही समझा था कि आज युद्ध समाप्त।

कल ह्वाइट-हालसे यह घोषणा होगी कि भारतको सन् दो हजार चौव्वालीसमें स्वराज्य देनेके विचारके लिये एक कमीशन बैठेगा और दिल्लीमें दरबार होनेकी सूचना होगी कि आजसे पचीस साल तक कुछ भय है, उसके बाद ही राजबन्दियोंके छोड़नेपर तुरत विचार होगा।

किन्तु मैं तो यही सोच रहा था कि लड़ाई बन्द आज होगी तो कलसे दालदा और खाँटी तेलके स्थानपर कमसे कम दालमें डालनेके लिए घी तो मिल ही जायगा और गेहूँ जो बाजारमें मिलेगा उसमें केवल पचास फीसदी धूल होगी।

रेडियो लगाकर बैठा, कोई सूचना नहीं। लीडरकी इन्तजारीमें बैठा रहा, कोई समाचार नहीं। संध्याको 'संसार' और 'आज' दोनों छान डाला। युद्ध बन्द होनेकी कोई सूचना नहीं। संध्याको दिल बैठ गया, जैसे पुराना कुआं। तो लामा भी झूठ बोलते हैं। नयनाभिरामाके पास जाकर बैठ गया, भोजनका कोई सामान नहीं था।

अभी कुछ दिन और भूसा मिला गेहूँ, धूल मिला चावल और दस आने सेर आलू ही पर निर्वाह करना होगा। धोतीके स्थानपर लुंगीसे ही काम चलाना होगा। कानकी इयरिंगकी भाँति मुँह लटकाये भगेलूसावकी दूकानपर चला गया। बोला—'सावजी लड़ाई आज भी बन्द नहीं हुई। बोले—'क्या बन्द होनेवाली थी! बड़ा अच्छा हुआ बन्द नहीं हुई। एक-सौ सड़सठमें सत्ताइस हजारकी चाँदी खरीद-

कर रखी है। लड़ाई बन्द हो जाती तब मैं कहींका नहीं रहता। और तीस गाँठ धोती रख छोड़ी है, फिर वह तो उसी साढ़े तीन रुपये जोड़ेमें बिकती। भाई तुम अखबार पढ़ते हो, लड़ाई बन्द होनेवाली हो तो एक महीने पहले खबर देना। सब माल निकाल दूँगा। नहीं तो बड़ा घाटा होगा। बड़े मुश्किलसे लड़ाई होती है। बीस-बीस बरस बाद और जब दो-चार पैसे हम लोगोंको मिलनेवाले होते हैं, तब चार,पाँच सालमें ही बन्द हो जाती है। यदि ऐसा ही रहा तब हम लोग कैसे जी सकेंगे।'

मैंने कहा, 'यह तो बड़ी सरल बात है। आप एक बार अमेरिका चले जाइये। आजकल बहुतसे लोग उधर जा रहे हैं। प्रेसिडेण्ट रूज वेल्टसे मिलिये। वह फिर प्रेसिडेण्ट हो रहे हैं। कहियेगा कि ऐसा कुछ कीजिये कि हम लोग जी जायँ। आप ऐसी कुछ व्यवस्था कर दीजिये कि लड़ाई बीस साल तक और चल जाय। ऐसे ही अवसरोंपर हमलोग चार पैसे बना लेते हैं।

झूठ कि सच

एक दिन एक पण्डितजी मिले। राहमें टहलते-टहलते हुए। नमस्कार हुआ लगे पूछने— 'कहिये बहुत दिनपर भेंट हुई। कुशल तो है ? आप तो मिलते ही नहीं', इतनी आत्मीयता दिखायी कि मुझे अपने ताऊकी याद आने लगी। तीन दिनोंके पश्चात् खयालीरामसे भेंट हुई। बोले—भाई क्या बात है। तुमसे पंडित दीनानाथसे क्यों झगड़ा हो गया। मैंने अकचकाकर पूछा—'झगड़ा, कैसा झगड़ा। मैं तो किसीसे झगड़ा करता नहीं। कभी कभी अपनी पत्नीसे झगड़ा अवश्य करता हूँ—किन्तु युद्धकी घोषणा उन्हींकी ओरसे होती है। मैं तो कर्ममें विश्वास करता हूँ—कर्त्तामें नहीं। वह सिरको एक ओर उछालकर लगे कहने—'अजी क्या बातें बनाते हो।' बिना झगड़ाके कोई ऐसी बात कह नहीं सकता। मैं और भी घबराया। मैंने पूछा—क्या कह रहे थे दीनानाथ'। उन्होंने उत्तर दिया—'कह रहे थे आपको कि वह तो

बहुत ही गिरा हुआ आदमी है। चन्दा खा जाता है। अभी कांग्रेस कमेटीका हिसाब नहीं दिया। जब मैंने पूछा कि भाई हिसाब क्यों नहीं देते तो मुझसे लड़ने को तैयार हो गये। मैंने खयालीरामसे कहा—'इसमें उतना ही सत्य है जितना रसगुल्लेमें नमक होता है। मुझसे तो दीनानाथ मिले तो लगे कहने कि आपके ऐसा प्रबन्ध कोई क्या करेगा। सार्वजनिक धन यदि कहीं सुरक्षित है तो आपके पास।'

फिर खयालीराम चले गये। मैंने सोचा दीननाथके यहाँ चलूँ। वहाँ उनसे पूछा तो बोले—'कौन? खयालीराम कहते थे। अरे उसकी बातोंपर विश्वास करते हो। वह तो झूठ न बोले तो उसका व्यवसाय ही न चले। आपको भला कौन कुछ कह सकता है मैं तो आपको अपने हृदयमें हरिश्चंद्र समझता हूँ। इस नगरमें कोई इतना सच्चा और आचारवान् नहीं है। यों बनने को जो चाहे बने'।

घर लौट आया। दो दिनोंतक सोचता रहा कि दीनानाथ और खयाली राममें कौन विश्वासी हो सकता है सोचते सोचते रहस्यका पता लग गया। मुझे न वटवृक्षके नीचे बैठकर तपस्या करनी पड़ी, न किसीके हाथोंकी खीर खानी पड़ी। दो व्यक्तियोंके भेंट से ज्ञानकी उत्पत्ति हो गयी। संसारमें जीना हो तो झूठका आश्रय लेकर जीना चाहिये। कोई मिले तो सामने ऐसी बातें करनी चाहिये जैसे आपसे बढकर उसका शुभचिंतक कोई है ही नहीं। किन्तु मनमें सोचते रहना चाहिये कि अवसर मिले तो गरदन काट ली जाय।

यदि आप किसीसे राहमें मिलते हैं तो गरदन फेरकर चले जाते हैं, बोलते नहीं तो आप घमंडी हैं, अशिष्ट हैं, असभ्य हैं, झगड़ालू हैं। चाहे आप यह सब कुछ न हों। और आप पाखंडी हों, धूर्त हों, बेईमान हों, किन्तु सामनेसे आते हुए व्यक्तिसे मिलनेपर ऐसे मिलें जैसे राम लक्ष्मण मिले थे तब आपमें कोई अवगुण समाजक आँखोंमें रह नहीं जाता। समाजके आप गौरव हैं, शालीनताके आप राजा हैं, मानवताके नेता हैं। सभ्य समाज की नींव झूठ है।

आपके यहाँ अतिथि आये। वनस्पतिमें बना हलवा और पूरियाँ आप खिला रहे हैं उसे। साथ ही कहते चले जा रहे हैं, ठिकानेका घी तो आज कल मिलता ही नहीं। मैंने तो गाँवसे प्रबन्ध कर लिया है मुझे तो अच्छा घी मिल जाता है। किसी आतिथेयने अपने अतिथिसे आज तक यह नहीं कहा कि मैं वनस्पति खिला रहा हूँ। और अतिथि भी मनमें जानता है कि इसने वनस्पतिका ही प्रयोग किया है किन्तु उसका साहस यह कहनेका नहीं है। दोनों झूठे हैं किन्तु यही तो शिष्टता है आजका समाज झूठपर बना है कि सचपर इसकी खोज कीजिये।

एक घटना बताता हूँ। मेरे मित्रने एक सज्जनके यहाँ नौकरीकी। सिफारिशके लिए जिनका बड़ा नाम है उन्होंने जहाँसे नौकरी मिलनेवाली थी उसके लिये बड़ा सुन्दर सिफारिशी पत्र लिख दिया। यह प्रसन्न बदन चले। उनके निकलते नामधारीने दूसरा पत्र उक्त सज्जनके नाम लिखा कि मेरे पत्रका कुछ ख्याल न कीजियेगा। मैंने यों ही लिख दिया था। यह व्यक्ति तंग कर रहा था इसलिए लिख दिया। इसका पता उस समय चला जब मेरे मित्रके सामने अफसरने दोनों पत्र रख दिए और पूछा किसे ठीक मानूँ।

आजका समाज झूठ चाहता है। इसीसे वह प्रसन्न है। वह युग गया जब शोपनहारने कहा था कि सत्य शब्द पर मैं मुग्ध हूँ। महात्मा गांधीको छोड़कर इस युगका ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो सार्वजनिक कार्योंमें सदा सत्य बोलता हो। सत्य तो सत्य है ही। आजकी विद्या और कला झूठको सत्य कर दिखानेके लिए है। इसीको सफलता कहते हैं। किस चतुराईसे, किस सफाईसे झूठ कहा जा सकता है। सुकरातने सूफियोंके ऊपर यह अभियोग लगाया था कि यह झूठको सत्य दिखानेकी चेष्टा करते हैं अब यह चेष्टा नहीं यह धर्म हो गया है। यूरोपने ही इस कलाका विकास किया। हमारे देशमें भी इस कलाके पण्डित हैं। राज-नीतिका तो प्राण ही यह है। कभी किसीने कह दिया

होगा 'मनस्येकं, वचस्येकं।' अब तो मनमें कुछ और जिह्वापर कुछ और होना ही उचित है। सफलताकी वही सीढ़ी है। सभ्यता इतनी पेचीदा हो गयी है कि उसे भूठसे सुलझाया जा सकता है।

समाज सत्य बोलनेवालेका आदर नहीं करता। विशुद्ध जलमें गुलाबका पुट उसे मनमोहक बना देता है। इस प्रकार सब कामोंमें भूठ रस पैदा कर देता है। उसमें आकर्षण है धर्म और आचरणके सिद्धान्त समाज द्वारा ही बनते हैं। समाज हमें प्रच्छन्न ढङ्गसे सिखाता है कि भूठ की शक्ति अधिक है। इसलिये यही मानवधर्म है। शिक्षा का पण्डित जानता है कि अमुक बात हानिकर है किन्तु उसे मन्त्रियों को प्रसन्न करना है इसलिए वह उन विचारोंमें वह आस्था प्रदर्शित करता है जो ब्राह्मण गायत्रीमें। यही अवस्था सभी बातोंमें है।

घटना सर्वथा नवीन है। अभी दो महीने पहले महात्मा गांधीको बहुतसे लोग गालियाँ देते थे; अब भयके मारे उनकी प्रशंसामें लेख लिखते हैं, कविता करते हैं, भाषण देते हैं। समाज और सरकार उनपर विश्वास भी करने लगती है। कुछ लोग इसे पाखण्ड भी कहते हैं। मैं कहता हूँ यह नवयुगका आचार है। इसी ढंगसे हमें अपनेको शिक्षित करना चाहिये। जीवन संग्राममें सत्यकी विजय नहीं, पाखंड, भूठ धोखे आदि की विजय हो रही है। प्रत्यक्ष सत्य है कि भूठ।

लाल पेंसिल

कल रात एकाएक नींद खुल पड़ी। मुझमें बड़ा दोष है कि सोनेमें तनिक भी व्याघात पहुँचा और नींद खुली। लोग गाना सुनते-सुनते सो जाते हैं। मैं यदि 'निद्रित अवस्थामें रहूँ—और कोमलसे कोमल स्वरकी एक भनक कानमें पहुँच जाय तो नींद असफल प्रेमीके हृदयकी भाँति टूट जाती है। ऐसा ही कल भी हुआ। स्तब्ध रजनी थी। सारा संसार कायरके समान शांत था। पीठमें कुछ धंस रहा था। हाथसे टटोला। हाथ वहाँ तक पहुँचा नहीं। नींद तो गयी ही। पर क्या है। कोई वस्तु कड़ी कड़ी लकड़ीका टुकड़ा है। मन खीझ उठा बिछौना बिछाते समय इतना भी लोग नहीं देख सकते कि बिस्तरपर कूड़ा कतवार तो कुछ नहीं है। किन्तु झल्लाहटसे कोई लाभ नहीं। उठना ही पड़ा। यहाँसे नीचे हाथ डालने पर एक टुकड़ा पेंसिलका हाथ आया न जाने कैसे वह चद्दरके नीचे आ गयी थी।

पेंसिल साधारण नहीं लाल थी। कटते-कटते वह उँगलीके बराबर हो गयी थी। इतनी छोटी थी फिर भी मुझे तंग करनेके लिए पर्याप्त थी। साढ़े पाँच फुटसे कुछ अधिक ही मेरे शरीरकी लम्बाई है और घेरा भी तीन फुटसे अधिक ही है। पेंसिल भी रही होगी डेढ़ इञ्चकी और इसकी मोटाई तिहाई इञ्च। फिर भी मेरी नींद नष्ट कर देनेके लिए पर्याप्त थी। यह तो कहिये नोंक नहीं थी नहीं तो घायल कर देती। सूई, आलपीन, काँटा तो छोटा होता है किन्तु बड़ेसे बड़े शरीरमें छेद तो कर ही देता है। पेंसिलको हाथमें मैंने उठाया फेंकनेके लिए। किन्तु उसे देखते ही उन कापियोंका रूप मेरे मस्तककी आँखोंके सामने खड़ा हो गया।

कितनी कापियोंकी परीक्षा मैंने इस पेंसिलसे की, नहीं कह सकता। फिर भी पचाससे कम संख्या नहीं रही होगी। कितने ही मूर्खों की कापियोंपर वह इस प्रकार चली जिस प्रकार पाँच बजे सबेरे बनारस की सड़कोंपर मेहतर महानुभाव झाड़ू चलाते हैं अथवा जिस प्रकार हल्दीघाटीमें राणा प्रतापकी तलवार चलती थी। अथवा कभी-कभी भाषण देते समय नेताओंके हाथ चला करते हैं। मैं पेंसिलको ही देखता रह गया। इसने प्रसन्न होकर कितनी उत्तर-पुस्तकों पर अंकोंका दान दिया होगा। इसके कारण कितनोंकी आशाएँ विधवाकी चूड़ियोंकी तरह चूर हुई होंगी कितनोंको इसने ऊँचे पदपर पहुँचने योग्य बना दिया होगा। जिस भाँति खेतोंपर हल चलता है उसी भाँति कपियोंके पृष्ठोंपर यह चलती रही है। उसी चलानेमें कितन विनष्ट हो गये, कितने उगे।

संसार के जितने भी परीक्षक हैं यदि इस बातका लेखा रखते कि मेरी पेन्सिलसे कितने असफलता की कुनैन चाटते रहे और कितने सफलताकी रसमलाई तो इस पेंसिलका मूल्य कितना बढ़ जाता। आज उन लेखनियोंका मूल्य कितना होगा जिस लेखनीसे वरसाईकी संधिपर हस्ताक्षर किया गया था, जिस लेखनीसे हिटलरने रूससे

लड़ाई आरम्भ की थी, जिस लेखनीसे भारतकी स्वतन्त्रताके कागजोंपर हस्ताक्षर हुआ उन लेखनियोंको लोग प्रेमिकाकी भाँति संजोकर रखते हैं। इसी प्रकार यदि उस पेंसिलका पता लग जाय जो उस परीक्षकके पास थी जिसने चर्चिलकी कापी देखी थी, या जिसके कारण पंतजी इंटरमीडिएटकी परीक्षा नहीं पास कर सके किन्तु कवि हो गये तो लोग उसे प्राप्त करनेके लिए लालायित हो जायँगे। संसारके बड़े-बड़े म्यूजियम उसे रखनेमें अपना गौरव समझेंगे।

लेखनीका इतना महत्व हो और इस रंगीन पेंसिलका नहीं विचित्र बात है। क्यों ऐसा है मैं कह नहीं सकता। और जब मैंने यह अनुभव किया कि यह जीवन ही नहीं नष्ट करती नींदका विनाश भी कर देती है तब तो इसका महत्व और भी मेरी दृष्टिमें हो गया। नींद ही जीवन है। जीवन से बढ़कर भी हो सकती है। जो बातें जाग्रत अवस्थामें असम्भव है वह नींदमें साकार हो जाती हैं। नींदमें ही सपने दिखाई देते हैं। जो वस्तु सपनेका आनन्द देती है वह सुधासे बढ़कर; स्वर्गसे बढ़कर है और उसे जो नष्ट करे उसे जितना दण्ड दिया जाय कम है।

पेंसिल धँसने तथा जागनेके पहले मैं सपना देख रहा था। मैंने देखा कि सोने कि मसहरी पर मैं लेटा हूँ। मसहरीके खंभोंमें चम्पककी महक है। सिकन्दर मेरा पाँव दबा रहे हैं और नूरजहाँ मेरे सिरमें तेल लगा रही हैं। मार्क्स अखबार पढ़कर मुझे सुना रहे हैं और जूलियस सीजर पंखा झल रहे हैं। मुझे आश्चर्य हो रहा था मैं किस पदपर हूँ, क्या बात है जो संसारके इतने महान कवि मेरी सेवा कर रहे हैं। मुझे इतना स्मरण था कि मैं कहींका शासक नहीं, नेता नहीं। तब क्या बात कि इतना सम्मान मिल रहा है। मैं जिस सुखका अनुभव कर रहा था उसीके लिए उपनिषदने 'रसोवैसः' कहा है। अगोचर गोतीत था। उस सपनेको तोड़ा इस पेंसिलने।

नींदकी महिमा क्या कहूँ। नींदकी महिमा पूछिये कुम्भकर्णसे जो छः महीनेके बाद कठिनाईसे उसका पल्ला छोड़ते हैं। नींदकी महिमा पूछिये क्षीरसागरशायी भगवानसे जो छः महीने एक साथ उसका आनन्द लेते हैं। नींदका महत्व रिपवान विंकिलसे लगेगा जो बीस सालतक लगातार सोया था। नींदका बड़प्पन पूछिये विद्यार्थियोसे जो उसके सामने पुस्तक, परीक्षा, माता पिताकी फटकारको तुच्छ समझते हैं। और ऐसी नींदको जिसने चौपट किया उसके लिए क्या कहूँ यदि पेंसिल चीनी या खोयेकी बनी होती तब तो मैं उसे तुरत खा जाता। किन्तु लकड़ी की पेंसिलको क्या करता पुराने कोशोंमें इतनी गालियाँ भी नहीं कि जी भरके देता। उसके लिए भी किसी नये कोशकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। मैंने निकटकी मेजपर पेंसिल रख दी। सोचूँगा क्या करना चाहिये।

बैलगाड़ी

मैं तो बरात बहुत ही कम करता हूँ। इसलिए नहीं कि भोजनका कष्ट होता है किन्तु इसलिए भी कि अपने बिवाह की स्मृति जाग्रत हो जाती है और फिर एक बार यौवनके सपनेका आभास होने लगता है। और फिर जी चाहता है शीर्षासन करके, और कायाकल्प करके युवक बन जाऊँ। किन्तु इस बार तो बेतरह फँसा। छुट्टी भी थी, बीमार भी नहीं था, गाड़ीके समयके पहले एक आदमी मेरे घर पहुँच गया। मानों मैं कहीं भाग जानेवाला हूँ पहरा पड़ रहा है।

स्टेशन पहुँचा। सबके सामानके साथ मेरा भी सामान रख दिया गया। सूटकेस और होल्डऑल दोनोंपर एक-एक कागज का टुकड़ा बाँध दिया गया। एक तीसरे दर्जेका बड़ा डब्बा लोगोंने रिजर्व करा रखा था। हम लोग चालीस आदमीके लगभग थे बड़े आरामसे सब लोग बैठ गये। गाड़ी चली गार्ड साहबको पाँच रुपयेका नोट किसीने दिया। उन्होंने मुसकराकर पूछा कोई कष्ट तो नहीं है और चले गये।

दो बजे दिनको गाड़ी स्टेशन पहुँची। वहाँ उतरकर लोगोंने जल-पान किया। वहाँसे आठ मील जाना था जहाँ बिवाह होनेवाला था। और जानेके लिए केवल तीन प्रकारकी सवारियाँ थीं। हाथी, घोड़ा और बैलगाड़ी। इस गाँवमें पूर्ण स्वराज्य था इसलिए मोटरकार और बसका तो कहना ही क्या एक्का भी नहीं मिलता था। स्टेशनके निकट एक एक्कावाला था किन्तु उसकी घोड़ीको बच्चा होनेवाला था इसलिए उसका एक्का भी बेकार था। मुझसे पूछा गया कि आप कैसे चलेंगे। आठ

मील कोई अधिक नहीं था, मैं पैदल भी जा सकता था किन्तु मैंने बैलगाड़ी ही पसन्द की। हाथीपर सवार होनेका फल मैं एक बार पा चुका था। घोड़ा वीरोंकी सवारी अवश्य है किन्तु साहित्यकारोंकी नहीं। पहले युगकी बात नहीं जानता किन्तु मैंने प्रसादजी को, निरालाजीको, मैथिलीशरण गुप्तजीको कभी घोड़ेपर सवार नहीं देखा।

मेरी सुविधाके लिए गाड़ीमें गद्दा और चद्दर बिछा दिये गये जिसमें मैं लेट सकूँ। और सचमुच मैं लेट गया। एक और सज्जन मेरे साथ थे। वह आजमगढ़में मुख्तारी करते थे। गाड़ीवानने बैल जोते और गाड़ी चली। आकाश में बदली थी। सावनका महीना था। हवा मन्द-मन्द चल रही थी। गाड़ी अधिक मन्द थी कि हवा कह नहीं सकता। गाड़ीके बैलसे गाड़ीवान बात करता जाता था। ऐसा जान पड़ता था कि बैल भी गाड़ीवानकी बातोंको समझते हैं।

वैदिक कालमें लोग गाड़ीपर चलते थे कि नहीं कह नहीं सकता। किन्तु मुझे ऐसा जान पड़ता था कि आर्य लोग अभी-अभी पञ्जाबसे युक्तप्रांतकी ओर बढ़े हैं और मैं भी उन्हींमेंसे एक हूँ—बैलगाड़ीपर चला जा रहा हूँ किसी ऐसे स्थान की खोजमें जहाँ रहकर झोपड़ी बना सकूँ। दोनों ओर धानके खेत लहलहा रहे थे और उनके चारों ओर समुद्रके समान जल फैला हुआ था। सड़कपर लम्बी-लम्बी गहरी लीक फैली हुई थीं मानों जरा जर्जरित किसी वृद्धका मस्तक है। धूलसे जब पहिया ढँक जाता था तब कहीं कीचड़से पूर्ण सड़क मिल जाती थी और पहियेपर दो-दो इञ्च मिट्टीका लेप हो जाता था। आगे जहाँ सड़क सूखी होती वहाँ मिट्टी फैल जाती। इस प्रकार गाड़ी मुझीको नहीं ले जा रही थी। मिट्टी भी ढो रही थी। तेज चलनेवाली सवारियों में बड़ा भारी दुर्गुण है कि उनमें कुछ ग्रहण करने क्षमता नहीं होती। मन्द गतिका यह गुण है। विचारोंके विस्तारके लिए तो बैलगाड़ीकी सवारी बहुत ही उपयुक्त है। विचारोंकी शृङ्खला टूटने नहीं पाती। सोचते जाइये। यह डर तो नहीं है कि अभी स्टेशन आ जायगा। फिर पान, बीड़ी,

सिगरेटकी चिल्लाहटसे आपका सपना भंग नहीं हो सकता। आप धीरे-धीरे सोचते चलिये ऊपर अनन्त आकाश है जो आपके विचारोंको भी अनन्त बना देगा। मैंने तो जैसा ऊपर कहा है वैदिक युगमें अपने को पाया। और आनन्द। रेलके डब्बेमें लोगोंकी खाँसीके कीटाणु, धुएँ चाहे वह सौंफी बीड़ीके हों या ५५५ सिगरेटके हों या हवाना सिगरेटके हों, चारों ओर फैलते हैं। उनसे कुछ कालके लिए रक्षा हो गयी। और पवन की उदारताका कुछ आभास होने लगा। धूल भी उड़ती थी। किन्तु वह धूल सूर्यकी किरणोंसे 'पासदुराइज्ड' की हुई थी। उसमें किसी बीमारीके कीटाणु होनेकी आशंका नहीं थी।

घोड़े और हाथी निकल गये। मेरी बैलगाड़ी और बैलगाड़ियोंसे भी सुस्त थी। गाड़ीवानने दस पन्द्रह बार सुरती फाँकी इससे उसकी सुषुम्ना नाड़ीमें कुछ शांतिका प्रसार होने लगा और वह उस गाँवकी कच्ची सड़क छोड़कर सपनेके संसारमें विचरने लगा। बैल आज्ञाकारी थे। वह एक मतिसे एक गतिसे सड़कके बीच परिवारके बोझके समान गाड़ी खींचते चले जा रहे थे। हमलोग आधी दूर आये थे। आकाश मेघाच्छन्न हो गया। और जब गाड़ीवानकी मुंडी हुई खोपड़ी पर टपसे दो तीन बड़ी बड़ी बूंदे पड़ी तब वह सचेत हुआ। मैं घबड़ाया। छाता मेरे पास था नहीं न मेरे साथीके पास। ऐसा जान पड़ा कि इन्द्र-भगवान मुझे स्नान कराने पर तुले हैं। मैं उठ बैठा। दूर एक आमकी बारी थी। गाड़ीवानसे कहा वहीं ले चलो कुछ तो रक्षा हो ही जायगी। मैं ही हूँ—कि आजकल सन्ध्या-सबेरे पानीकी कलके नीचेसे उठनेका मन नहीं करता और इस समय पानीसे घबरा रहा हूँ—विधिका सभी विचित्र विधान है। किन्तु गाड़ीवानके चेहरेपर घबराहटकी एक भी रेखा नहीं दिखाई दी। वह तो महात्माजीका प्रतीक जान पड़ा। जैसे वह भारतकी गाड़ी घबड़ाहटके बिना धीरे-धीरे खींचते चले जा रहे हैं। उसी भाँति यह भी। उन्हें भी सब बातोंमें एक गुण दिखाई देता है। गाड़ीवान बोला

घबराइये नहीं बाबू साहब! यह पानी क्या है बड़ा पत्थर भी कुछ नहीं कर सकता। और उसने झटसे गाड़ीके नीचेसे सिरकीकी दो छतें निकाल कर गाड़ीके ऊपर बाँध दी। यह पीला छप्पर ऐसा जान पड़ा कि सुवर्णका छत्र किसीने मेरे ऊपर लगा दिया है। पानी जोरोंसे आया। सचमुच अन्दर पानी नहीं आ रहा था। कभी-कभी एकाध नन्हीं बूंद आ जाती थी केवल स्मरण करानेके लिए कि मेघ महाराजका शासन काल समाप्त नहीं हो गया है। नहीं तो ऊपर पानी गिरता था और ऐसे फिसल जाता था जैसे पुलिस पैसेपर फिसलती है। हमारे साथी महोदय तो सो गये। ऐसा जान पड़ा कि इन्होंने अफीमका इंजेक्शन लिया है। बैलोंका शरीर तर हो रहा था। वह बेचारे सन्तोष और शांतिकी प्रतिमा बने धीरे-धीरे चले जा रहे थे। कभी-कभी गरदन हिला देते थे और जलके कुछ कण इधर-उधर गिर पड़ते थे। जैसे बड़े-बड़े कंजूस भी स्वर्गमें अपना स्थान सुरक्षित करानेके लिए कभी-कभी कुछ दान दे दिया करते हैं।

रेल तेज होती है इसलिये बीच-बीचमें रुकना पड़ता है। बैलगाड़ीकी गति ऐसी होती है कि रुकनेकी आवश्यकता नहीं। सोच रहा था कि गतिसे चलना और बीचमें रुकना ठीक है या धीरे-धीरे एक रङ्गसे चलना ठीक है। क्या निर्णय करता, किस बातका निर्णय संसारमें आजतक हुआ है। यह भी लोग नहीं निश्चय रूपसे कह सके कि ईश्वर है कि नहीं।

अगर कहीं बैलगाड़ी लन्दनकी सड़कोंपर चले तो क्या होगा। जहाँ एक से एक गतिवान सवारियाँ चलती हैं। यह भारत ही है कि मोटरकी बगलमें बैलगाड़ी भी चलती है ठीक वैसे जैसे बिड़लों और सिंहनियोंकी नाकसे नीचे अस्थि-पंजरवाले मानव भी साँस लेते चले जा रहे हैं। यही एक देश है जहाँ बीसवीं शतीमें भी दसवीं शती दिखाई देती है।

प्रतीक्षा

काव्यके समीक्षाकारोंने साहित्यमें नव या दस रस माने हैं। प्रतीक्षाको एक रस क्यों नहीं माना इसका उत्तर वही दे सकते हैं। जिस प्रकार लोग आजकल आचार्य बन रहे हैं या बनाये जा रहे हैं उसी प्रकार मुझे भी सुविधा मिली तो प्रतीक्षाको रसोंकी श्रेणीमें लाकर रख दूँगा। काव्यके सिद्धान्तोंके अनुसार ऐसा हो सकता है कि नहीं इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। अब युग लोकतन्त्रका है। विश्वमें जब धर्म, चरित्र, इत्यादिकी पूछ नहीं है तब साहित्यमें ही इसकी चिन्ता क्यों हो। और प्रतीक्षा में आनन्द कितना लोकोत्तर है यह तो किसीसे छिपा नहीं है। ऐसी स्वादिष्ट वस्तुकी गणना रसमें न हो यह न्याय तो नहीं माना जा सकता।

मैं कोई नयी बात नहीं कह रहा हूँ। नयी बात कोई संसारमें होती है कि नहीं इसमें सन्देह है। पुराने समयके बुद्धिमान महापुरुषोंने कहा, अपने परिश्रमसे, धूर्ततासे जो कमायी प्राप्त की हो उसे दूसरोंको देते चलो। प्रतीक्षा करते रहो जब मनों ढेर लकड़ीकी अग्निसे परिष्कृत होकर स्वर्गकी संगमरमरकी सीढ़ीपर चढ़ने लगोगे तब इससे सहायता

मिलेगी। सीढ़ीपर फिसल न सकोगे। रामभंडारसे मिठाइयाँ लेकर या शुद्ध खोए और शक्कर तथा घीका लड्डु ब्राह्मणोंको खिलाइये। आपके लिए एक कक्ष स्वर्गमें 'अलाट' हो जायगा। आप इसी प्रतीक्षामें कि स्वर्गमें एक सुसज्जित कमरा मिलेगा सुन्दर भोजन करा रहे हैं। आप कहीं काम करते हैं जबतक वेतन नहीं मिलता प्रतीक्षा करते हैं। आन्ध्र-की खादीका इस बार कुरता बनेगा, बहुत दिनोंसे बालोंमें लोशन नहीं लगा इस बार कमसे कम अगुरु ही एक शीशी ले लेंगे, इस बार वह रेशमी जंपरका कपड़ा जिसे पत्नीजीने गंगा स्नानसे लौटते समय देख लिया था, लेना है। उसे साधारण दरजीसे न सिलाकर सिविल लाइन से सिलवाऊँगा। वही डिजाइन जैसी सुरैया उस फिल्ममें फिल्मका नाम भूल गया उतारी थी। चारपाईका चद्दर भी लूंगा। इस बार बड़े बार्डरवाला जो लखनऊके नगर कांग्रेस कमेटीकी चौकीपर देखा था। इस प्रकारके कितने मीठे सपने आप देखते रहते हैं। और जिस समय वेतन मिला कुछ घरके किरायेमें गया, कुछ भोजनकी दूकानपर और कुछ उधार चुकानेमें। सब कार्यक्रम ध्वंस हो गया जैसे मुगल साम्राज्य। प्रतीक्षामें जो सुख था, जो आनन्द था, लस्सीके समुद्रमें हम जो डुबकियाँ लगाते थे वह वेतन मिलते ही समाप्त। प्रेमी प्रेमिकाकी प्रतीक्षाका तो कवियोंने वर्णन करते कितने टन कागज रंग डाले हैं। प्रतीक्षामें हृदय उसी प्रकार आनन्दकी हिलोरें लेता है जैसे सावन-भादोंमें गंगाके वक्षस्थलपर डोंगी।

कहीं आप निमंत्रणमें गये हैं। आठ बजेका समय है, आप सात ही बजे पहुँच जाते हैं। ऐसे अवसरोंपर पहले पहुँच जाना अच्छा होता है। लेखकको इस सम्बन्धकी एक पीड़ासे पुरस्सर स्मृति है। एक स्थान-पर आमंत्रित किया गया। परिचित थे, कुछ घनिष्ठ भी थे। समयसे एक घंटे विलम्बसे पहुँचा। दो पंगत उठ गयी थी। आतिथेयने बढ़िया कुलफी जमवायी थी। पूर्वके दो पंगतवाले अधिक खा गये। बाद-वालोंके लिए नहीं बची। रातभर बेचैनी थी। इसलिए पहले जाना

चाहिये और जहाँतक हो सके पहली पंगत की पत्तलपर आक्रमण करना चाहिये।

पहले जाकर आप प्रतीक्षा करते हैं। क्या-क्या मिठाइयाँ आनेवाली हैं इनका विचार करते हैं। करते-करते कभी-कभी रूमालसे आप अपने अधर पोंछते हैं। कचौरियोंकी कल्पना आप करते हैं; रायतेके चित्रको जिह्वासे रौंदते हैं, तरकारीसे मनकी तलवार लेकर तकरार करते हैं। और इस ऊहापोहमें वही सुख मिलता है जिसे 'रसो वैसः' कहते हैं।

स्वराज्य ही लीजिये। कैसी प्रतीक्षा थी। इसके लिए लोगोंने फाँसीकी रस्सियाँ बटवायी, जेलोंकी दीवार उठवायी, और कलेजेको गोलियोंका लक्ष बनाया। प्रतीक्षा करनेवाले सोचते थे कि हमारा राज होगा तो कलक्टर आकर सबेरे हमारे घर पूछ जायगा आपने जलपान किया कि नहीं, कोतवाल आकर पूछ जायँगे तरकारी आ गयी कि नहीं। रेलपर सारे भारतकी यात्रा कर आयेंगे—कमसे कम तीर्थ स्थानोंकी ओर किराया नहीं लगेगा। सरकारकी ओरसे स्टेशनोंपर भोजन भी मिलेगा। आवश्यकता पड़ेगी हम सड़कपर खाट बिछाकर लेट सकेंगे। गेहूँ रुपयेका डेढ़ मन, घी सवा पाँच सेर, दूध सोलह सेर और चावल दो मन तो मिलने ही लगेगा। स्वराज्यकी प्राप्तिके जलूसके साथ-साथ सारी कानूनकी पुस्तकोंका गंगाके पावन जलमें विसर्जन होगा। किन्तु स्वराज्य हो गया। निराशाके ओले सबके सिरपर पड़ने लगे। न हमको जिससे चाहें उससे बदला लेनेका अवसर दिया जाता है न सड़कपर तलवार भाँजनेका। सब वही कानून, सब वही ढंग, वही नियम। बताइये जो प्रतीक्षामें आनन्द था वह लक्ष प्राप्त होनेपर है।

प्रतीक्षाको समझिये क्षीरसागरसे निकली वारुणी और सुधाका मीलित रस उसका आनन्द 'लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्व कालं' तब भी पूर्ण नहीं हो सकेगा।

छुट्टी का दिन

छुट्टी! इस शब्दमें बड़ा ही आकर्षण है। स्वराजमें, यौवनमें, लाटरीकी विजयमें, क्रासवर्डकी पहेलीके प्रथम पुरस्कारमें जो आनन्द है वही छुट्टीमें है! इस आनन्दका अनुभव सब लोग नहीं कर पाते। संसारमें नाना प्रकारके पदार्थ हैं किन्तु सबके भाग्यमें वह नहीं है। सब लोग शिमला नहीं बुलाये गये। कितने लोग तो इस पृथ्वीपर पैदा होकर, और बहुत दिनों तक उस धरतीके प्राणियोंकी जनसंख्यामें वृद्धि कर और फिर दूसरी दुनियाका टिकट कटाकर साकेत लोककी यात्रा भी कर चुके किन्तु उन्होंने शैंपेनकी शकल नहीं देखी। कितने लोग यह लालसा हृदयमें दफन किये हुए ही चल बसे कि कभी 'मजनू एण्ड फरहाद एण्ड को० अनलिमिटेड'के हिस्सेदार हम भी हो जाते। इसी भाँति छुट्टीका भी रस सबको नहीं मिलता। रस इसलिए कहा कि यदि 'रसो वै सहः' ब्रह्मानन्द है, और काव्यका रस ब्रह्मानन्द सहोदर है, तो

भोजनका रस ब्रह्मानन्दका भतीजा और छुट्टीका रस ब्रह्मानन्दका पोष्य-पुत्र है।

हमारे देशमें चार प्रकारके मनुष्य हैं। एक तो रोजगार करनेवाले जिन्होने कभी छुट्टीका सपना नहीं देखा। नींदमें भी देखते हैं कि चाँदीका भाव गिरा, रुई दो आने बढ़ गयी और तीसी चढ़ रही है। दूसरे खेतिहर जिन्हें छुट्टी मिलती तो है किन्तु वह छुट्टी छुट्टी नहीं रहती जैसे भारतवर्ष हमारा होकर भी हमारा नहीं है। उन्हें छुट्टी बेगारी करनेमें, महाजनका रुपया भरनेके लिए कलकत्ता या कानपुर जानेमें या कमसे कम गाय या भैंस नीलाम हो जानेपर रोनेमें बितानी पड़ती है। तीसरे वह लोग हैं जो मेहनत-मजदूरी करते हैं। इन्हें अवश्य अवकाश मिलता है। दिन भरके कामसे संध्याको या दिन ही में कुछ अवकाश मिल जाता है। किन्तु छुट्टीका सबसे अधिक महत्व नौकरी करनेवालोंके लिए है। चाकरी तो निकृष्ट श्रेणीका व्यवसाय है। किन्तु छुट्टी इस अंधकारमें एक किरण है जैसे अरबके रेगिस्तान-में खजूर; अथवा गंजी खोपड़ीके केन्द्रमें हिन्दू धर्मकी पताका— शिखा।

कुछ लोग कह सकते हैं कि ऐसे लोग भी हैं जिन्हें अवकाश ही अवकाश है। जैसे पेंशन पाने वाले सरकारी कर्मचारी अथवा ऐसे लोग जिनके पिता एक छोटी सी पुस्तक छोड़ गये हैं जिसके साथ एक छोटा-सा कागज दस्तखत करके बंकमें भेज दिया गया और धड़से सूद आ गया। पेंशनवाले तो सचमुच छुट्टी पाते हैं। उसका सदुपयोग भी करते हैं। दोनों समय आध-आध पाव खमीरा या दो-रसा पीनेमें, दोपहर सोनेमें, सबेरा तरकारी लानेमें और बाकी बचा समय बच्चों-को खेलानेमें। कुछ लोग होमियोपैथी भी आरम्भ कर देते हैं और इनके भाग्यमें छुट्टी बदा नहीं होती। रह गयी उनकी बातें जो अपने पिता और पितामहके छोड़े हुए नोट पर लोटते हैं और कुछ नहीं करते। उनके सम्बन्धमें कुछ विद्वानोंसे सलाह लेनेवाला हूँ कि इन्हें मनुष्य कहा जाय कि नहीं।

एक और बात है। लोग मेरे विचारोंमें संशोधन उपस्थित करेंगे और कहेंगे कि स्त्रियोंका नाम भी जोड़ दीजिये इन्हें छुट्टी ही छुट्टी रहती है। इस सम्बन्धमें मुझे यही कहना है कि मैं कुछ कहनेका अधिकारी पहिले तो नहीं हूँ—दूसरी बात यह है कि इन्हें तो जहाँ तक मेरा अनुभव है छुट्टी ही नहीं मिलती। चालीसके अगर इस पार हैं तो सन्ध्या सिनेमामें कट जाती है; अगर उस पार तो सबेरा भजन ध्यान पूजामें, और काशी ऐसे स्थानमें, गंगा स्नानमें। रह गया और समय। दोनों समय भोजन बनाना स्वयं: स्नान आदि प्रसाधनमें दोनों समय एक-एक घण्टा, भोजन करनेमें दो घंटा। पड़ोसिन अथवा मित्रके यहाँ प्रतिदिन नहीं तो अतरे दिन जाना तो आवश्यक ही है। वहाँ काफी समय लगता है। सुशीलाके पति कंजूस हैं, राधाकी लड़की उलटे पल्लेसे साड़ी आढ़ती है, करुणाकी इयरिंगमें नकली हीरा जड़ा है और गुलदावदीके कमरेमें पृथ्वीराजका चित्र टंगा है। यह सब गम्भीर बातें आवश्यक हैं और इनपर विचार-विनिमयमें समय लगता ही है। फिर जाड़ेमें स्वेटर बुनना ही है, साड़ी तहियानी ही है, हाथका कड़ा साफ करना ही है। छुट्टी कहाँ; समय कहाँ। इतना भी समय नहीं मिलता कि पतलूनका टूटा बटन टाँक सकें या कुरतेकी जेब जिसमेंसे उस दिन दुअन्नी गिर पड़ी थी सी सकें। महात्माजी तो अंग्रेजी सरकारके सलाहकार हो गये थे। मुझे यदि ईश्वरने कभी सलाहकार नियुक्त किया तो स्त्रियोंके लिए छत्तीस घण्टेका दिन बनवा देनेकी सिफारिश करूँगा।

तो छुट्टी तो नौकरी वालोंकी है। किसीको कम किसीको अधिक छुट्टी मिलती है। डाक और रेलवालोंकी छोड़ दीजिये। अब अपवाद तो होता ही है। बैलोंमें डांगर होते हैं; तेलोंमें रेंड़ीका तेल होता है, फलोंमें धतूरा होता है। छुट्टीका आनन्द नौकर ही उठाते हैं जैसे रेलकी यात्राका सैनिक, पहाड़ोंका अंग्रेज और राजनीतिक मुनाफेका बिरादराने अहले इसलाम।

बड़ी छुट्टियोंका तो बड़े उल्लाससे, बड़े उत्साहसे, बड़ी-बड़ी याजनाओंसे स्वागत होता है। साधारण रविवारके दिनकी इतनी प्रतीक्षा की जाती है मानों लड़केका विवाह करने बारात आनेवाली है। उस दिन सबेरे बाल छटेंगे, पुस्तकें इधर-उधर पड़ी हैं उन्हें ठीक करना है; रामभजनसिंह डेढ़ महीना हुआ पाँच रुपये ले गये कल जाकर लाना आवश्यक है, मामाके ससुरालसे, और सहपाठी श्यामाचरणके पत्र कई दिनोंसे आकर पड़े हैं उन्हें तो कुछ उत्तर दे ही देना होगा, दरजीने कल कमीज देनेको भी कहा है। चूड़ियाँ भी खरीदनेके लिए रविवार पर ही टाल रहा हूँ। कल न मोल लेना आफत मोल लेना है कल आर्यसमाजमें हुज्जत खाँ की शुद्धि होनेवाली है और आठ बजे रातको स्वछन्द काव्यगोष्ठीकी ओरसे लोटारामका काव्यमें मौर्ख्यवादपर भाषण भी होनेवाला है। इतना तो जरूरी काम मुख्य है। छोटी-मोटी बातें जैसे कढ़ी बनेगी उसके लिए नीबू लाना, बच्ची के लिए चीनीया बादाम खरीदना, पुस्तकालयकी पुस्तक लौटाना तो घेलुएमें।

रातको सोते समय मन सबका पारायण एक बार कर गया। सबेरे नींद खुली सोचा कि बहुत समय है तनिक एक झपकी और ले लूँ। आठ बज गये। नाई आकर लौट गया। यह तो अब दूसरे एतवारके लिए टला। मुँह धोया, स्नान करनेके लिए सिरमें तेल लगा रहा था कि गजानन पाठक पहुँचे। एक महाकाव्य उन्होंने लिखा है। कुम्भकर्ण उसके नायक हैं। बोले एक सर्ग सुन लीजिये। क्या अलंकार है, दंडी, माघ औ कालिदास सब फीके पड़ गये हैं। वह पढ़ते गये मैं काव्यके सौंदर्य पर नहीं ध्यान कर रहा था यह सोच रहा था कि कब यह यहाँसे खिसकेंगे। एक सर्ग सुनाकर बोले किन्तु नवें सर्गमें तो प्रतिभा फूट पड़ी है। इसके कुछ छंद सुनिये। उसे भी पूरा सुना गये। दस बज रहे थे वह सुना ही रहे थे कि दो मित्र पहुँचे। मैं बोला, मैं स्नान करके अभी आता हूँ। हाथ पकड़कर बोले अजी आज भी क्या जल्दी है। रविवार तो है? एक प्याला चाय बनवाओ फिर नहाना। चाय

पिलाई हुई। बारह बजे जब चाय पी जाती है केवल पानीमें उबाली चायकी पत्तियां और कुछ दूध और चीनी ही नहीं होती। इस युगमें चायका अर्थ है दो रसगुल्ले चार समोसे और दालमोट प्रत्येक प्यालेके साथ। बारह बजा। वह लोग चले कि दो विद्यार्थियोंके अभिभावक पहुँचे। गरीबीके कारण उनके लड़कोंकी फीस माफ होनी चाहिये। कायदा कानून उनकी समझमें नहीं आता उनके हिसाबसे हम जो चाहें कर सकते हैं। किसी भाँति उनसे पल्ला छुड़ाया। नहाने पहुँचे। बाल कट न सका, नीबू आया नहीं कढ़ी बन न सकी। रोज जैसा ही भोजन खाया। खानेके बाद लीडर पढ़ते-पढ़ते नींद आ गयी। चार बजे उठा। चाय पीते पीते पांच बजा। उसी समय खबर मिली छोटी बच्ची कटोरीमें रखा सरसोंका तेल पी गयी सो रोना ही नहीं बन्द कर रही है। न जाने पेटमें क्या हो जाय। डाक्टरके यहाँ लेकर जाना ही होगा। संध्याका प्रोग्राम भी गया खैर चूड़ी भी नहीं आयी। छुट्टी की छुट्टी हो गयी।

नाच

समयके प्रभावसे बचना कठिन है। लाख कोई चेष्टा करे, किन्तु युगमें इतनी शक्ति होती है कि वह खींच ही लेता है। मनुष्य तो क्या बड़े-बड़े राष्ट्र, समाजका समाज, युगकी धारामें बह जाता है। इस समय नाचका इतना महत्व है कि इस पर भी लिखना ही पड़ता है जैसे चुनाव है, प्रगतिवाद है, मार्क्सवादी आलोचना है, वनस्पति घी है, टी० एस० इलीयटकी कविता है, नेनुएका भाव है उसी भाँति नाच भी इस युगका बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है। मेरा विचार है कि इस समय यदि इस प्रश्नका निबटारा आवश्यक है कि हिन्दू-मुस्लिम एक राष्ट्र है कि दो, या राष्ट्र भाषा हिन्दी हो कि उर्दू कि हिन्दोस्तानी, उसी भाँति यह भी आवश्यक है कि राष्ट्रके लिए कथाकली नृत्य ठीक होगा कि कत्थक शैली।

मैंने इसका महत्व तब समझा जब मेरे एक मित्रकी लड़कीका विवाह ठीक हो रहा था, बल्कि होनेवाला था। कई पत्र व्यवहारके पश्चात सारी बातें निश्चित करनेके लिए मेरे मित्र लड़केके पिताके यहाँ पहुँचे। ऐसा जान पड़ता है कि यह लोग कुछ पुराने विचारके थे। नहीं तो लड़केसे ही बात करते। पितासे मिलनेकी कोई विशेष आवश्यकता न थी। लड़केके पितासे उनसे बातें हुई। पूछने पर मेरे मित्रने

बताया कि लड़की इण्टर पास है, तकियेकी खोलपर 'गुडनाइट' काढ़ना जानती है, ऊनके स्वेटर बुनना जानती है। बालोंमें कितने प्रकार हेयरक्लिप लगायी जाती है, यह भी उसे मालूम है। लड़केके पिता यह सब जानकर प्रसन्न हुए। फिर कुछ सोचकर उन्होंने कहा लड़की तो गुणी जान पड़ती है। तिलक आदिकी बात तय हो जाने पर विवाह ठीक हो जाना कुछ कठिन नहीं है। 'हाँ यह तो बताइये' उन्होंने पूछा जैसे यकायक कोई बात याद हो गयी हो, उसे नाचना आता है?' मेरे मित्र कुछ उदास भावसे बोले—नहीं उसे नाचना तो नहीं आता। लड़केके पिताने कहा—तो बताइये कैसे विवाह हो सकता है। कलाकी बात तो छोड़ दीजिये, जीवनकी उपयोगिताकी दृष्टिसे भी नृत्य कितना आवश्यक है। मेरा लड़का कोई उच्च सरकारी पद पायेगा। ही, एम० ए० में पढ़ रहा है। और यदि डिप्टकलक्टरीमें सफल न हुआ तो कहीं इण्टर कालेजमें प्रोफेसरी तो गयी नहीं है। जब दिन भर दिमाग थकाकर वह घर लौटेगा उस समय यदि उसकी स्त्री और कुछ न सही कहरवा ताल पर तनिकसी नाच देगी तो कितनी तबीयत प्रसन्न होगी।

मेरे मित्र लौट आये। इस घटनासे नाचकी महत्ता मैंने समझ ली। उर्दू पढ़ना यदि राष्ट्रके संगठनके लिए आवश्यक है तो समाजमें दाम्पत्य जीवनके लिए नाच कितनी अनिवार्य वस्तु है। इसके महत्वको कम लोग समझ रहे हैं। जो दूरदर्शी हैं, जिन्हें भारतके भविष्यको सुन्दर बनानेकी धुन है उन्होंने तो सीखना और सिखाना आरम्भ कर दिया है।

प्राचीन यूनानमें आत्माकी उन्नतिके लिए संगीत और शरीरके विकासके लिए नृत्य आवश्यक था। शिक्षाके ये दो विशेष अंग गीत और नृत्य पुरुष और स्त्री दोनों सीखते थे। भारतवासियोंके यहाँ प्राचीन गुरुकुलोंमें छात्र तथा छात्राएँ ऋषियों तथा ऋषिपत्नियोंके साथ नाचती थीं कि नहीं पता नहीं चलता। रामयणमें कहीं इसका

उल्लेख नहीं मिलता। जान पड़ता है रायायण उस कालकी पुस्तक है जब हिन्दू सभ्यता अपनी पतनावस्थामें थी।

और पुराने समयमें नाचकी प्रथा रही है या नहीं, इतना तो भागवतके आधार पर कहा ही जा सकता है कि गोपियाँ नाचती थीं। और यह युग जिसे मिथ्या धारणासे लोग कलियुग कहते हैं वास्तवमें कला युग है। झाड़ लगानेसे लेकर बिन्दी लगाने तक सब काम कलापूर्ण ही होते हैं। इस कलाके युगमें नृत्यका बड़ा मूल्य है।

प्रकृति स्वयं नाचती है। अभी सन्ध्या समय किसी लम्पके निकट खड़े हो जाइये। खंभेके चारो ओर किस मस्तीसे, किस मादकतासे, असंख्य जीव नाचते हैं। उनके नृत्यसे हवामें कैसी-कैसी रेखाएँ बनती हैं; गोलाकार हैं, अण्डाकार हैं, हाइपर बोला हैं, पैरा बोला हैं और असंख्य घुमाव और दौड़ और उछल और कूद। साधना बोस, लीला देसाई, उदयशंकरमें भी वह तेजी नहीं है जो इन फतिगोंमें है।

मुझे अनेक कलाकारोंका नृत्य देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। किन्तु किसीमें यह तल्लीनता, यह आत्मत्याग नहीं दिखायी पड़ा जो बिजलीके लंपके चारों ओर शलभ समुदायमें दिखायी पड़ता है। देशी दीपके चारों ओर भी फतिगे मँडराते हैं, शमाके इर्दगिर्द भी परवानोंका मजमा रहता है परन्तु उतना नहीं जितना बिजलीके लट्टूके पास। इससे तीन निष्कर्ष मैंने निकाला। शास्त्रकार बननेकी क्षमता मुझमें है नहीं नहीं तो एक शलभ दर्शनका निर्माण मैं करता। नृत्य प्रदर्शन तो आजकल बहुत होता है किन्तु नृत्य दर्शन किसीने नहीं लिखा। बहुत दिन हुए एक कोई भरत पैदा हुए थे उन्होंने नाट्यशास्त्र लिखा था। किन्तु सुना जाता है उसका बहुतसा अंश तो वह स्वयं अपने साथ लेते गये। थोड़ासा ही हम लोगोंको मिला उसीपर सारी उछल कूद होती है।

इस सम्बन्धमें एक बात खोजकी रह गयी। किसी जीव-विज्ञानके पण्डितको खोज करके वह देखना चाहिये कि प्रकाशके सम्मुख

जो शलभ रहते हैं वह पुरुष रहते हैं कि उनकी स्त्रियाँ रहती हैं या कि दोनों। इससे पता चलेगा कि हमारे दूरदर्शी देशवासियोंकी भाँति शलभोंकी जातिने अभी पश्चिमी सभ्यता अपनायी कि नहीं। अभी शलभ कुमारियाँ ही नृत्यमें थिरकती हैं कि जेंटलमैन शलभ थी।

शलभोंका नृत्य देखनेसे एक बात तो स्पष्टतः प्रतीत होती है। जबतक कोई जाज्वल्यमान प्राणी सम्मुख न रहे तबतक नाचमें मादकता नहीं आती। कलाका उत्कर्ष नहीं होता। दर्शकोंका साधारणीकरण नहीं होता। इसलिये नृत्यके समय दर्शक भी बुलाये जाते हैं, जिससे कला कर्तृयाँ अपनी कलाको चरम सीमातक ले जायँ। कलाके लिए, कलाकी उन्नतिके लिए यह भी आवश्यक है कि नृत्यमें दर्शक लोग उपस्थित रहें। किन्तु ऐसे दर्शकोंको वहाँ नहीं जाना चाहिये जिनके कपोलोंमें दोनों ओर छ-छ इञ्चके कूप हों, जिनके अधखुले नयन हाथी की आँखोंकी समता करने के लिए लालायित हों और जिनका रंग जंबु द्वीपका प्रतीक हो। ऐसे लोगोंकी उपस्थितिसे कला उसी भांति बिगड़ जाती है जैसे पीनेके पानीमें दो चार बूदें मिट्टके तेलकी पड़नेसे। नृत्यके समय तो दीपकके समान, शमाके समान बिजलीके बल्बके समान प्रकाशमान, उज्ज्वल आकर्षक लोग ही होने चाहिये।

एक बातका दुख है। बेचारे कलाकार जी तोड़कर ही नहीं, कमर तोड़कर गर्दन तोड़कर, हाथ-पाँव जोड़कर नृत्यकी उन्नति की ओर उन्मुख हैं। किंतु जनता विमुखसी जान पड़ती है। तकली, चर्खा, साक्षरताके साथ साथ इसे भी क्रियात्मक प्रोग्राममें सम्मिलित करना चाहिये। मैं समझता हूँ इस समय देशपर सारी दुर्दशा है जो उसका एकमात्र कारण यही है कि यहाँ नाचका समुचित प्रबंध नहीं है। असेंबलीमें भाषणोंके स्थानपर नृत्य हो तो अधिक लाभ हो। इस बार सदस्य इसी दृष्टिसे चुने जायँ तो अच्छा हो।

रेडियो

वह माँग क्या जिसमें सिंदुर न हो, और वह घर क्या जिसमें रेडियो न हो। चार पाँच साल पहले यही भले आदमियोंके घरमें चर्चा थी। भला आदमी तो मैं भी हूँ। कमसे कम घर के बाहर मुझे लोग यही समझते भी हैं, कमसे कम ऐसा मेरा ख्याल है। रेडिया खरीदना आवश्यक समझा गया। आजसे कई साल पहलेकी बात है। लड़ाई इतने जोरोंसे शुरू नहीं हुई थी। इसलिये लड़ाईके समाचार सुननेकी उत्सुकता न थी। नयी नयी चीज थी, कुछ शानके लिए, कुछ घर बैठे तमंचा जानकी ठुमरी, हीरा बाईका बसंत, फैयाज खाँकी जैजैवती, पटवर्धनका तराना, रतन जानकरका जौनपुरीका खयाल सुननेका शौक। रेडियो खरीद लिया। साफ बढ़िया टेबुल खरीदा। इधरसे उधर तार खींचे गये। बिंदुमाधवके धरहरे के समान दो लंबे बांस घरके दो कोनोंमें ठोंक-ठोंककर खड़े किये गये। और उनपर तार लगाकर एरियल तैयार किया गया। बाहर

आकर अपने घरकी छतके ऊपर जो एरियल देखा तो छाती. गयी। जान पड़ा कि हरिहर क्षेत्रके मेलेसे हाथी लाकार बाँध दिया है।

सबेरेका समय था घरभरके सब लोग रेडियोके निकट एकत्र हुए। बच्चोंके लिए तो एक कुतूहल था, श्रीमतीजीने भी कभी रेडियोको अपना मुख नहीं दिखाया था। बिजलीकी घुण्डी ऊपरसे नीचे की गयी। रेडियोमें सूई ठीककी गयी और हम सब लोग उत्सुकतासे आँख फाड़-फाड़ कर रेडियोकी ओर देखने लगे। पाँच सात सेकेण्डके बाद कुछ खर-खर शब्द हुए फिर एक विचित्र बाजासा सुनायी पड़ा और उसके बाद ही सुनायी पड़ा—आदाब अर्ज। यह दिल्ली है। आज जुमेरात-के ठीक आठ बजे हैं। मेरी पत्नीजीने पूछा इस सबेरेके समय भी यह रात क्यों कहता है। क्या दिल्लीमें इस समय रात है। मेरी श्रीमती-जीकी शिक्षा आजसे पचीस साल पहिलेकी है। उस समय राष्ट्रीयता-का जोर कम था इसलिए मुझे समझाना पड़ा कि रातसे यहां अभि-प्राय नहीं है। जुमेरात गुरुवारको कहते हैं। फिर उन्होंने पूछा कि यह आदाब अर्ज क्या है। मैंने कहा कि यह सलाम करनेका सभ्यता-वाला ढंग है। उन्होंने कहा कि अगर गुरुवार या वृहस्पतिवार बोलते और नमस्ते या रामराम कहते तो क्या हानि थी मैंने कहा कि हानि तो मैं नहीं कह सकता किन्तु नमस्ते, रामराम कुछ पुराने ढंगकी बातें हैं और इनसे सांप्रदायिकता टपकती है आदाब अर्जमें राष्ट्रीयता है और गुरुवार या बृहस्पतिवार सब लोग नहीं समझ सकते। मुसलमान लोग तो समझते ही नहीं, हिन्दुओंमें भी बड़े-बड़े विद्वान, प्रोफेसर, सम्पादक' इत्यादि नहीं समझते। शिष्ट और सभ्य लोग आदाब अर्ज ही कहते हैं।

इसके पश्चात् शमशाद बाई, जोहरा बाई, पुखराज बेगमका गाना हुआ और मीर अजूबा खाँने कहानी पढ़ी। क्या भाषा थी। स्वयं मौलाना मुहम्मद हुसैन आजाद और सर सैय्यद अहमद और डाक्टर नजीर अहमदकी रूहको समझनेके लिए सिर खुजलाना पड़ा होगा।

मैंने तो समझा कि कहानी है इसलिए कि वहांसे कहा गया कि कहानी है। पहिले मैंने समझा कि गलतीसे सूई बगदाद या इसतंबोलपर लग गयी है। पर बार बार देखनेसे यही जान पड़ा कि दिल्ली ही है। मेरी पत्नीने पूछा कि क्या कह रहा है। उन्हें मैं क्या समझाता जब स्वयं ही कुछ न समझमें आया। मैंने कह दिया कि तुरकीसे कमालपाशाका भाषण हो रहा है।

इसके बाद कहा गया कि आजकी खबरें सुनायी जायँगी। खबर सुनानेवाले बोले—'जरमनी और रूसकी मखासमत उरूजपर है। योरपके जनूबके ममालिकमें बैतुल अकवामियतके नुकतए नजरसे जरमनीका कब्जा होना निहायत जरूरी है। मदरासमें परसों पाँच किश्तियाँ कावेरी दरियाको अबूर करते हुए आबदोज हो गयीं।' मेरी श्रीमतीजीने पूछा कि यह कैसी खबरें हैं। क्या हैं। मैंने कहा यही भाषा आजकल पढ़े लिखे लोगों की भाषा है। जिसे सब लोग समझते हैं। गँवारोंके लिए रेडियो नहीं है। मेरी श्रीमतीजीको इतना क्रोध आया कि वह लोढ़ा उठा लायीं। और रेडियोका कैबिनेट राजा जनक-के धनुषकी भाँति चूर होनेवाला था कि मैंने लोढ़ेको छीन लिया। वह बोली तुमने बेकार ढाई सौ रुपये फूँक दिए। इतनेमें तो मेरे लिए एक हल्की सी चैन बन जाती।

मैंने कहा कि हम लोगोंका दुर्भाग्य है कि रेडियोकी भाषा समझमें नहीं आती। सुनता हूँ रेडियोमें वही भाषा बोली जाती है जो स्वराज्य होनेपर भारतकी राष्ट्र-भाषा बनेगी।

तबसे बराबर रेडियोकी भाषा राष्ट्रीय होती जा रही है मैं भी डर के मारे बहुत कम सुनता हूँ। कहीं श्रीमतीजीने सुन लिया तो रेडियो की पूजा लोढ़ेसे होने लगेगी। अभी मेरा भाषाका ज्ञान वही पुराना है। हाँ कुछ कुछ रेडियोकी भाषा आदर्शसे गिरी है। वजीर खारजा की जगह विदेशी वजीर, जनूबकी जगह दखिन, करसनजीका जनम खयालकी दुरुतलय इत्यादि अब सुनाई पड़ते हैं। जान पड़ता है यही

हाल रहा तो कुछ दिनोंमें रेडियोकी भाषा अवधी और भोजपुरी हो जायगी।

सुना है आजकल हिन्दी साहित्य सम्मेलन रेडियोके विरुद्ध आन्दोलन कर रहा है। हिन्दी साम्प्रदायिक, सम्मेलन साम्प्रदायिक इसलिये यह आन्दोलन साम्प्रदायिक है। क्यों सम्मेलन आंदोलन कर रहा है सो भी समझमें नहीं आ रहा है। जितने रेडियो स्टेशन हैं सब मिलाकर तीन हिन्दी जाननेवाले भी वहाँ हैं। कवि गोबरचंदको वहाँ कविता पढ़नेके लिए बुलाते ही हैं; खरेंद्रकुमारकी कहानियाँ पढ़ी ही जाती हैं। अब हिन्दीवाले क्या चाहते हैं वहां सब हिन्दीवालेही जाँय। एक क्षेत्र तो हिन्दी वालोंको छोड़ देना चाहिये। पुस्तकें हिन्दीमें अधिक छपें, समाचार पत्र हिन्दीके अधिक निकलें एक रेडियो उनका सहारा रह गया उसे भी आप छीनना चाहते हैं। घोर अन्याय है। हमारा तो प्रस्ताव है कि बुखारी महाशय वहां हैं ही, सर सुलतान अहमदका शासन है ही, सारा विभाग मुस्लिम लीगके सुपुर्दकर दिया जाय।

शरद ऋतु

शरदऋतु आ गयी है। आकाश बिना बादलके होने लगा है यद्यपि कभी-कभी बादल दिखायी दे जाते हैं जैसे किसी गंजी खोपड़ी पर इधर-उधर तीन-चार बाल दिखायी पड़ते हैं। कवियों, पागलों और साँपोंके लिए यह ऋतु बहुत भयंकर है। क्षमा करेंगे लोग, प्रेमियोंके लिए भी। चांदनी न होती तो कितने कवियोंकी कविता ही न बैठती। अब तो इसमें भी संदेह होने लगा है कि चाँदनी न होती तो कविता होती कि नहीं। चाँदनी पर प्रेम बिछता है, प्रेमपर कविता लटकती है और कवितापर प्रेमी सवार रहता है। कवि और कविताके लिए यह समय वैसा ही है जैसे धानके लिए सावन, पूर्वी भारतमें। यों तो और भी रोग इस ऋतुमें बाढ़पर रहते हैं जैसे मलेरिया, टाइफाइड, तथा फाइलेरिया। किन्तु प्रेमका रोग इस ऋतुमें विशेष सजग हो जाता है। भगवानकी कृपासे प्रेमके बिरवेको पनपनेके लिए यह युग भी

विशेष रूपमें उचित है। और कोई पौधा दुर्बल धरती में उग नहीं सकता। प्रेम स्वयं शक्तिदायक है। यह वहीं उपज सकता है जहाँ शक्तिका अभाव हो। गामा, चन्दनचौबे; गुलामके रोमांसकी कहानी आपने न सुनी होगी। इन लोगोंकी सारी शक्ति डण्ड बैठकमें समाप्त हो गयी; प्रेमके लिये नहीं बच रही। जिसके फेफड़ेमें क्षयके पंछीका नीड़ हो, जिसके हृदयमें रक्तचापकी मधुरबीणा बजती हो, जिसके मस्तिष्कके मानसरोवरमें विक्षिप्तताका मंजुमराल डुबकियाँ लगाता हो, जो मृणालकी नालके समान क्षीण हो, जिसे अपनी नाकसे अधिक दूर दिखायी न देता हो वही प्रेम करनेकी शक्ति रखता है। युग इसके लिए अनुकूल है। आजके युगके कूलपर प्रेमीकी नौका अठखेलियाँ कर सकती है। घीका उसी प्रकार लोप हो गया जैसे सन्धिमें स्वरोंका लोप हो जाता है। पातञ्जलिको क्या पता था कि मैं जब 'अदर्शनंलोपः' सूत्र बना रहा हूँ। तब वह घीके लिए ही होगा।

जिस प्रकार सीमेंटमें बालू मिला दी जाती है कि वह अधिक बली हो जाय उसी प्रकार दूधकी पुष्टिके लिए पानी मिलाया जाता है। हरी तरकारियाँ उसी भाव बिकने लगी जिस भाव मलाई बिकती थी।

इसका परिणाम यह हुआ कि प्रेमके विद्युतके सञ्चारके लिए भारतीय मानवका शरीर बहुत उपयुक्त हो गया है। प्रेम और कविताका साथ वैसा ही है जैसे फल और छिलकेका। इसी कारण हमारे साहित्यमें जितने कवि हैं देशमें उतने नेता भी नहीं हैं। इनके लिए कातिका महीना जब शरद्‌की जुन्हाई अपनी चाँदीकी पालिशसे सारी धरतीको जगमगा देती है विशेष भयंकर होती है, भयंकर इसलिए कि इन्हें कविताके अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं। सुना है इस ऋतुमें लेखनी; सियाही और कापियोंकी बिक्री बढ़ जाती है। डाकखानेकी आय भी बढ़ जाती है।

यह प्रश्न उठ सकता है कि शरद ऋतुमें कवियों तथा प्रेमियोंको प्रोत्साहन मिलता है, और कवि तथा प्रेमीके मनमें एक प्रकारका उन्माद

उत्पन्न हो जाता है। विज्ञानकी खोज करनेवालोंने इधर ध्यान नहीं दिया। क्योंकि विज्ञानका अर्थ इस युगमें यह मान लिया गया है कि उन्हीं बातोंका अनुसन्धान किया जाय जिससे मनुष्यका विनाश हो। मनुष्यकी संख्या इन द्रुतगतिसे बढ़ रही है, मानव समाजके हितेच्छुओं को ऐसी औषधि खोजनी ही पड़ी जिससे मनुष्य इस ग्रहपर ग्रह न बने। कुछ लोगोंने सन्तति-निरोधकी व्यवस्था ढूँढी। कुछ लोगोंने प्रयोग भी किया। किन्तु सन्ततिकी उत्पत्ति कम नहीं हुई।

विज्ञानके पण्डितोंने भी सोचा कि मच्छरों, खटमलों, दीमकों, कीटोंके मारनेकी औषधि हमने खोज निकाली। सबसे बड़े कीड़े मानवके संहारका कोई प्रबन्ध ही नहीं हुआ। यद्यपि समय समयपर मानव समाजके शुभचिन्तक जन्मते रहे जैसे हनीबल, सिकन्दर, सीजर नेपोलियन, हिटलर, स्तालिन, चर्चिल जिन्होंने मनुष्योंकी संख्या घटाने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया। फिर मनुष्य क्षयके कीटाणुओंसे भी प्रबल निकला। तब विज्ञानके पण्डितोंने परमाणु बमकी खोज की। इससे अवश्य आशा की जाती है कि संसारकी जनसंख्यामें निश्चित कमी हो जायगी और लोगोंके रहनेके लिए भूमि मिल सकेगी।

विज्ञानके महापुरुष तो इधर लगे हैं, यह कौन खोज करे कि शरदऋतुकी क्या विशेषता है और क्यों है। मेरे मित्रने जिन्होंने बरलिन, मास्को, शिकागो, बियना, कैम्ब्रिज आदि विश्वविद्यालयोंमें खोज का कार्य किया है यह भी पता लगाया है कि इस ऋतुमें एक प्रकारके कीटाणु उत्पन्न होते हैं जिनके प्रभावसे कवियों तथा प्रेमियोंके मनमें उन्माद भर जाता है। उनसे यह भी पता चलता है कि यह कीटाणु चन्द्रमाके प्रकाशमें बढ़ते हैं। इसीसे जो लोग इससे बचना चाहें अपने को रातमें किसी कोठरीमें बन्द करें तो कुछ इसके आक्रमणसे रक्षा हो सकती है। और जहाँ चांदनी रातमें घरसे बाहर निकले कि इस कीटाणुका आक्रमण आरम्भ हो गया। सरिता कूल और भी भयङ्कर

है। उसी प्रकार जैसे प्लेगके रोगीको प्लेगसे मरे चूहेकी चटनी चटा दी जाय।

कवियोंने इसपर रचनाए की हैं किन्तु वह बाहर बाहरही मंडराते रहे हैं। ज्योत्स्ना और धवलपनकी प्रशंसामें ही अपनी लेखनी घिसी है उन्होंने। शरद्की आत्मा तक कोई नहीं पहुँचा, वहां तक वही पहुँच सकता है जिसने वैज्ञानिक ढंगसे खोज की हो। आजकल सभी वस्तुओंका वैज्ञानिक विवेचन होता है और वैज्ञानिक दृष्टिसे हम उन्हें देखते हैं। विज्ञानके सामने शरद्की चांदनीका केवल इतना ही अर्थ है कि सूर्यका प्रकाश चन्द्रमापर पड़ता है और प्रकाश लौटकर चन्द्रमासे पृथ्वीपर आता है। इसमें कौन-सी ऐसी बात है जिसके पीछे लोग पागल होकर पड़े हैं। ऐसी स्वाभाविक घटनाओंपर कविता लिखना, साहित्य निर्माण करना राष्ट्रीय शक्तिका दुरुपयोग करना है। हां कीटाणुवाली बात कुछ उचित जान पड़ती है। जब यह सिद्ध हो गया है संसारके सब रोग कीटाणुसे उत्पन्न होते हैं तब मनका, हृदयका रोग भी तो कीटाणुसे ही उत्पन्न होता होगा। और हमारे मित्र डाक्टरकी खोज ठीक जान पड़ती है कि शरद्के भी कीटाणु हैं। जो विक्षिप्तताके कीटाणुके सम्बन्धी जान पड़ते हैं।

कौआ

आज सबेरेसे ही मेरे सामने एक कौआ चिल्ला रहा है। कमरेसे बाहर सोनेका यह प्रसाद है। कमरेमें तो एलार्म घड़ी जब घंटी बजाने लगती है, हाथ बढ़ाकर बन्द कर देता हूँ। कौएकी चोंच बन्द करना मेरे बसका नहीं। उठकर उसे उड़ा सकता हूँ। किन्तु जब चारपाई-परसे उठ ही गया तब फिर कौआ चिल्लाए या चुप रहे। पासमें कोई वस्तु भी नहीं है जो खींचकर उसके ऊपर फेंक सकूँ। यह कलम पड़ी है। वह भी उसीके रंगकी है। यदि इसे फेकूँ भी तो इससे वह डरेगा कि नहीं, मैं कह नहीं सकता। अपने रंगकी वस्तु से लोग डरते हैं कि नहीं। मनुष्य तो मनुष्यसे डरता है। घरमें ताला इसलिए नहीं लगता कि बैल आकर हमारी थाली उठा ले जायगा या गधा आकर हमारी टोपी लगा लेगा। यह बेचारे पहुँच भी गये तो पेटभर भोजन करके चल देंगे। हम ताला ता लगाते हैं अपने ही भाई, अपने ही परिवारके लोगोंके लिए। यदि कोई किसीके घरमें घुसकर उतना ही ले जाता जितनी उसको आवश्यकता है तब तो विशेष कठिनाई

नहीं। किन्तु लोगोंका कहना है कि जब आवश्यकतासे अधिक है तब उठा ले जानेवाले भी आवश्यकतासे अधिक ले जायँगे।

जो हो हमने कलम नहीं फेंकी। कौआ काँव-काँव करता ही रहा और उसने मुझे उठाकर ही छोड़ा। जगानेका इतना अच्छा साधन कहीं देखनेमें नहीं आया। लोग कौएकी निन्दा करते हैं। काला रंग तो कुछ अनुचित नहीं। बाल काला होता है, भगवान् काले थे, ऐसा सुनते हैं। आँखें काली बड़ी मनलुभावनी होती हैं, कवि कहते हैं। नीलम काला होता है, बड़ा मनोहर पत्थर है। कलिंदजा काली हैं। व्रजवालोंसे पूछिये उसका तट कितना रोमांटिक है। और कस्तूरीका कहना ही क्या एक दानेमें मनमें मस्ती छा देती है।

रँगमें तो कौआ कुछ इन वस्तुओंसे गिरकर नहीं। उसकी बोलीपर आप रुष्ट होंगे। हृदयपर रंदेके सामान लगती है, कुछ लोग कहते हैं। बहुतसे मनुष्योंकी भी बोली ऐसी ही होती है। बेध देती है। कितने नेता ऐसी ही बोली बोलते हैं। हम उन्हें उचित नहीं समझते किन्तु समाचार पत्रोंमें बड़े-बड़े शीर्षक लगाकर छापते हैं। उनसे हमारी हानि भी होती है तब भी हम उसका प्रचार करते हैं। कौवेकी बोली किसीने नहीं छापी। क्योंकि उससे हमारी हानि नहीं। और हम मनुष्य होनेके नाते चाहते हैं कि लाभ न हो, हानि ही हो। मानव-जीवन हानिको बहुत चाहता है। हम प्रेम करते हैं। कौन बड़ा उपकार अपने परिवार अथवा अपने देशके साथ करते हैं। यदि विफल रहा तो, मकानकी कड़ियाँ गिनना, रातको गगनके तारे गिनना, कुछ आँसू गिराकर शरीरके जल-विभागको कष्ट देना, और समयसे पहले स्वर्ग या नर्क—कह नहीं सकता कहाँ—एक स्थान और छेंक लेना। लाभ तो कुछ हुआ नहीं किन्तु हानि हुई इसीका आनन्द है।

हमें हानिमें अधिक आनन्द आता है। इतना बड़ा युद्ध हुआ। जनकी, धनकी, सभ्यताकी हानिके लिए। और सच है यज्ञ हम करते भी इसीलिये हैं। सबका स्वाहा। सबका विध्वंस। भारतका बँटवारा

हुआ। यदि शान्तिपूर्वक हिन्दुस्तान और पाकिस्तान अपना-अपना कार्य सँभालते तो कौन इधर दृष्टिपात करता। इतिहासके पन्नेमें किसी कोनेमें छपा पड़ा रहता। इस समय जब लाखों प्राणियोंका बलिदान चढ़ रहा है तब इंगलैंडमें, अमरीकामें, रूसमें, सारे संसारमें ख्यातिकी पताका उड़ रही है।

इस बातके कहनेकी कौन धृष्टता कर सकता है कि कायदे आजम मूर्ख हैं। और यह सब उनके लाभकी बातें हैं यह भी कोई नहीं कह सकता। किन्तु हानि ही है।

हम भोजन करते हैं डटके। इससे किसका लाभ होता है? पैसा भी व्यय होता है, शरीरपर भी अत्याचार होता है किन्तु हम खाते जाते हैं। हमें इसमें आनन्द आता है कि हमारी हानि होती रहे। भगवानका ऐसा ही वरदान है।

कौएके प्रति हमें कुछ दुराग्रह है। हंसको हमने दमयन्ती और नलके प्रेमका सन्देश-वाहक बनाया, भ्रमरको इस कार्यके लिए उपयुक्त समझा, निर्जीव मेघको भी कालिदासने जीवन-दान दिया किन्तु काग बेचारा यों ही रह गया। प्रेमका सन्देश ले जानेके लिए यह पक्षी कितना उपयुक्त है। प्रातःकाल जब प्रेमिका अलसाये नेत्रोंसे अपना प्रतिबिम्ब ऊषामें निहारने लगे उसी समय सुदूरसे—अमरीका हो, आस्ट्रेलिया हो—न्यूजीलैंड हो, कौआ प्रेमका सन्देश लाकर सुना दे तो कितना भला जान पड़ेगा। इन देशोंका कौआ भी कला ही होता है, उजला नहीं। कुछ लोगोंका कहना है कि कौआ जूठा खाता है और पता नहीं क्या-क्या गन्दा भक्षण करता है। इसलिए उसका बायकाट किया गया है। यह घोर अन्याय है। इस हरिजनको इस प्रकार त्याग देना पक्षी समाजके प्रति निर्दयता है। अब तो हंस और चकोर, मयूर और चातकका युग गया। कागका युग है। इसके प्रति प्रेम और दया ही नहीं भाईचारेका व्यवहार अपेक्षित है।

पत्रों का उत्तर

जबसे सबेरे नींद खुली मुझे स्मरण होने लगा कि एक पत्रका उत्तर देना है। कई दिन पत्र आये हो गये। आज पत्रका उत्तर दे देना आवश्यक है, नहीं तो पत्र भेजनेवाला मेरे सम्बन्धमें क्या क्या कल्पनाएँ बनायेगा मैं कह नहीं सकता। जलपान करनेके पश्चात् पहला काम यही करना है। कुछ लोगोंके सम्बन्धमें सुना है कि वह पत्रोंका उत्तर देनेमें उसी प्रकार तत्पर हैं जैसे यूरोपकी पत्नियां अपने पतिको तलाक देनेके लिए तैयार बैठी रहती हैं। मैं उत्तर लिखने बैठा। मेरी दृष्टि एक पोस्ट-कार्डपर पड़ी। इसका भी उत्तर नहीं गया था। एक मास पहलेकी तिथि उसपर पड़ी थी। लेखकने पूछा था एक एकांकी नाटकका नाम। उनके यहां नाटक होनेवाला था। जिस तिथिको नाटक होनेवाला है उसे अब एक सप्ताह रह गये हैं। मैं सोचने लगा अब उन्हें उत्तर देना ठीक होगा कि नहीं। अब तो वहाँ रिहर्सल होता होगा खोज लिया होगा कोई नाटक। इन लोगोंको अब कोई आवश्यकता भी इसका उत्तर लिखनेकी नहीं है। मैं वह पत्र ढूँढ़ने लगा जिसका उत्तर लिखते

बठा था किन्तु एकके पश्चात् दूसरे कई पत्र निकले जो मेरे उत्तर पानेकी प्रतीक्षा वैसे ही कर रहे थे जिस प्रकार राजनितिक कार्यकर्ता कोई लाभ उठानेकी आशामें बैठे रहते हैं। अब कोई नया आयोजन हो और उन्हें उसमें कोई सुविधा प्राप्त हो।

पोस्टकार्ड महंगे हो जायँ, लिफाफेका मूल्य चौगुना हो जाय किन्तु पत्र लिखना लोग कभी नहीं छोड़ सकते। सचमुच पत्र लिखना आवश्यक भी है। व्यापारीका काम बिना पत्र लिखे चल नहीं सकता। प्रेमीका काम पत्र लिखे बिना नहीं चल सकता। हृदयकी भावनाओंकी चित्रकारी कहाँ और कैसे बन सकती है। मित्रोंका काम भी पत्रके बिना नहीं चल सकता। क्योंकि आजकल उधार लिए बिना गाड़ी रुक जाती है और सम्पादकोंके लिए क्या कहा जाय। उन्हें जब कुछ लिखने तथा प्रूफ देखनेसे अवकाश मिला और उन्होंने किसी न किसी लेखकके पास एक पत्र घसीट दिया। जब लेखकोंके पास पत्र जाते हैं तब लेखकोंकी क्या मनोवृत्ति होती है, यह जाननेकी चेष्टा करनी चाहिये। वही कलम सम्पादकोंके पास रहती है किन्तु चेक लिखनेमें कठिनाई होती है कोई पत्र लिखनेमें नहीं।

बहुतसे पत्र देखते देखते एक घण्टा बीत गया। पत्रका उत्तर अभी न लिख सका। पुराने पत्र पढ़ने लगा। यदि सबका उत्तर देने लगें तो आधा दिन बीत जायगा। मैं समझने लगा कि पत्रोंका उत्तर देना आवश्यक नहीं है। उतना ही फजूल है जितना पुलिससे इमानदारीकी आशा। क्यों पत्रोंका उत्तर दिया जाय। जो लोग पत्र लिखते हैं किसी न किसी स्वार्थवश लिखते हैं। उत्तर देकर समाजमें स्वार्थको प्रोत्साहन मिलेगा। प्रेमीको यदि प्रेमिकाका उत्तर न मिले तो प्रेममें तीव्रता आ जायगी। प्रेमकी अग्नि चाँइयोंकी बुद्धिके समान कभी भी मन्द नहीं होगी। हिन्दू-कोड बिल पास होनेपर जब तलाककी प्रथा बढ़ने लगेगी तब मुकदमें भी बढ़ेंगे। प्रेमिकाएँ यदि पत्रका उत्तर न दें तब कचहरीमें यह उपस्थित न होंगे और जजोंको निर्णयपर पहुँचनेमें सरलता होगी।

सम्बन्धी और मित्र कभी-कभी पूछते हैं अपना हाल लिखिये। यह भी पूछनेकी बात है। यह तो वैसा ही हुआ कि मिनिस्टर लोग कर्मचारियों से पूछें कि ईमानदारीसे काम हो रहा है न, वह तो हो रहा है। सरकारी कर्मचारी कभी बेइमानीकी बात सोच सकते हैं। रेखा-गणितके स्वयंसिद्ध सिद्धान्तोंके समान यह तो सिद्ध है कि झूठ और बेइमानीके लिए वहाँ स्थान नहीं है उसी प्रकार मुझसे क्यों पूछा जाता है कि आपकी तबीयत ठीक है, आपके घरपर सब कुशल है। खाने पीनेकी समस्या ऐसी सरल हो गयी है कि किसी प्रकार अकुशलताकी संभावना हो नहीं सकती।

आजकल स्थायित्वकी ओर सबका ध्यान जा रहा है। कविता जो लिखते हैं वह स्थायी लिखते हैं, पाठ्यपुस्तक लोग बनाते हैं वह स्थायी बनाते हैं। कपड़ा बनवाते हैं वह स्थायी बनवाते हैं। पहले स्थायी केवल संगीतमें होता था। अब हमारे जीवन में बहुत सी वस्तुएं स्थायी हो रही हैं। रोग स्थायी है, औषधि स्थायी है, भूख स्थायी है, दुर्बलता स्थायी है। फिर पूछना क्या कि आपका हाल क्या है। हालमें कभी कुछ गड़बड़ी होती तब तो सूचना जाती ही।

पत्रोंका उत्तर न देनेसे एक और लाभ होता है। यदि किसी पत्रका उत्तर आप देते हैं तो वह पत्र आप फेंक देते हैं। नहीं तो आपकी मेजपर आपकी खाटपर पत्र पड़े रहते हैं और देखनेवाले कहते हैं कि आप महान् व्यक्ति हैं, आपके पास इतने पत्र आते हैं। पत्रोंसे ही व्यक्तियोंकी महत्ता नापी जाती है। जितने अधिक पत्र आपके पास आते हैं उतने ही बड़े आप हैं। आपके घरवाले, मिलनेवाले आपकी ऊँचाईकी कल्पना मन ही मन करते हैं। मेरे एक सहपाठी थे वह स्वयं अपने नाम कई पत्र नित्य लिखकर डाकमें डाल देते थे। नित्य कालेजमें दस-बारह पत्र उनके नाम पहुँचते थे। छात्रोंपर ही नहीं प्रोफेसरोंपर भी उनकी धाक जमी थी। समझा जाता था उनका परिचय विस्तृत और विशाल है।

इसलिये पत्रोंका उत्तर न देना और उनकी भीड़ जमाये रखना नीतिकी दृष्टिसे भी हितकारी है। आपसे कोई उधार माँगता है। आप जानते हैं कि रुपया लौट नहीं सकता। यह लिखना कि मैं रुपया नहीं दूँगा सभ्यताकी बात नहीं। सचाई शिष्टताका गला घोंट डालती है? आप उत्तर नहीं देते। मित्रकी आशाकी बँवर बढ़ती जा रही है और हवामें झूल रही है। प्रेमिकाएँ, सम्पादक, लेखक यदि पत्रोंका उत्तर देने लगें तो संसारका बहुत बड़ा रोमांस लोप हो जाय, प्रतीक्षा-की बेलें मुरझा जायँ। आप सरकारको ही लीजिये। अभी नयी सर-कार है इसलिये ६ महीने, सालभरमें आपके पत्रोंका उत्तर मिल जाता है। जब सरकार अनुभवी हो जायगी तब आपके पत्रोंका उत्तर देना बन्द हो जायगा। पत्र लिखनेवाले जो भी हों उत्तर देनेवाले बुद्धिमान नहीं कहे जा सकते।

तोंद का महत्व

यूरोपसे भारतमें कितनी चीजें आयीं, कोई गिनती है। आलू आया जो तरकारियोंका नेता बन गया। तम्बाकू आयी जिसने बड़े-बड़ोंको हाथ फैलानेकी आदत सिखा दी। कालर आया जिससे गर्दन-की तन्तुओंको सीधा रखनेका अभ्यास पड़ गया और नेकटाई आयी जिससे लड़ाई होनेपर बैरियोंको कुछ सुविधा मिल गयी। परन्तु यह सब पुरानी बातें हैं। आजकल एक नयी प्रथा चल पड़ी है जो यूरोपसे भारतमें आयी है, जिसके पीछे भारतीय नवयुवक और युवतियाँ दीवाना और दीवानी हो रही हैं। वह है मोटाईके विरुद्ध आन्दो-लन। जहाँ देशमें स्वदेशी आन्दोलन है, अछूतोद्धार आन्दोलन है, घासलेटी साहित्यके विरुद्ध आन्दोलन है, कोर्टशिपके लिए आन्दोलन है, वहाँ मोटाईके विरुद्ध भी आन्दोलन है। यद्यपि इसका स्वरूप उतना व्यापक नहीं है जितना और आन्दोलनोंका, परन्तु कोई

आदमी, जिसके माथेपर दो आँखें हैं और खोपड़ी के भीतर वह वस्तु है जिसे लोग भेजा कहते हैं, इसके अस्तित्वसे इनकार नहीं कर सकता।

विदेशी पत्रोंमें और देशी अखबारोंमें दुबले होनेकी दवाओंका जो विज्ञापन बड़े जोर-शोरसे हो रहा है वह इस बातका प्रमाण है। बीसवीं सदीके युवकों और युवतियोंका विचार है कि दुबलापन सौंदर्यको बढ़ाता है। देशहितैषियोंके नाते भारतीय प्राचीन संस्कृतिके नामपर मानव-विकासकी रक्षाके लिये और ललितकलाको ह्राससे बचानेके लिए मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि इसका घोर विरोध करूँ। जैसे पडित वेंकटेशनारायण तिवारी शृंगार रसकी धारा नहीं बहने देंगे, जैसे पंडित रामनरेश त्रिपाठी ब्रजभाषा साहित्यका प्रचार नहीं होने देंगे वैसे मैं भी मोटाईके विरुद्ध आन्दोलन नहीं उठने दे सकता। और यदि अभीसे मैं इसे न रोकूँगा तो रूसके साम्यवाद के समान इसका प्रचार जड़ पकड़ लेगा। तब स्वराजी सरकार बड़ी कठिनाईमें पड़ेगी। मेरा विश्वास है कि कमसे कम वह लोग जिनके कमरका घेरा ६ फुट से अधिक है, मेरे इस काममें सहयोग करेंगे।

हमारे बड़े प्राचीन देवता हैं गणेशजी। इनका इतना महत्व है कि इनके पिताके विवाहमें भी इनकी पूजा हुई थी। उनका शरीर मुलाहजा फरमाइये। गोल-मटोल और सुन्दर है। आज नेलसनकी रीडरें पढ़कर हम अपने देवता को भूल जायँ पर मेरे ऐसे लोग जिन्हें अपने प्राचीन सनातन धर्मपर नाज है उन्हें कैसे भूल सकते हैं? हम लोग भी अगर गणेशजीके समान अपनेको न बना सके तो वे हमारे आदर्श हों कैसे। सबसे पहले सब कार्योंमें उन्हीं की पूजा होती है, इसलिए वह सनातन देवता हैं। वैसा ही रूप उनका है जैसा सनातन धर्मका है। यह लेख तो हम उन लोगोंके लिए लिख रहे हैं जिन्हें धर्मसे चिढ़ है। अधर्मी लोगोंकी बात छोड़िये। यह तो हुई शास्त्र और वेद और धर्मकी बात। अब 'नेचर' से शिक्षा लीजिये। आज-

कल सब लोग नेचरसे ही शिक्षा ग्रहण करते हैं। नेचुरोपैथीका युग है। सबसे सुन्दर जानवर हाथी है। सबसे मँहगा भी है; राजाओंकी सवारीमें काम आता है। कैसा स्थूलकाय जन्तु है। समुद्रमें सब जानवरोंका दादा ह्वेल है। कितना विशाल शरीर।

यह भी छोड़िये। आजकल सारे संसारका शासन जिनके हाथोंमें है; बाबू थैली प्रसादका शरीर देखिये। मेरा अभिप्राय महाजनोंसे है। बिना राजाके राज्य हो सकता है, बिना मूँछके आदमी हो सकता है, बिना रुपये के बंक हो सकता है, बिना कुछ जाने सम्पादक हो सकता है, बिना प्रेमके विवाह हो सकता है और बिना अधिकारके स्वराज्य हो सकता है परन्तु बिना तोंदके कोई महाजन आपने देखा है? अगर तोंद नहीं है तो महाजन नहीं है। जिसके पास रुपया है उसके पास तोंद है और जिसके पास तोंद है वह महाजन है। तोंदका महत्व इसीसे हमारे पाठक समझ गये होंगे। फिर भी कुछ सिर फिरे लोग हैं जिनके मनमें पश्चिमी शिक्षाका पागलपन समा गया है। वह ऐसी सुन्दर चीज तोंदको बुरा समझते हैं। मोटाईका खास लक्षण तोंदसे, शरीरकी कितनी सुन्दरता बढ़ जाती है, यह केवल कलाके पारखी समझ सकते हैं।

तोंदवाला आदमी लेट जाय तब उसके पेटके ऊपर कैसा सुन्दर एक स्तूप बन जाता है। आपको साँचीका स्तूप देखने जानेकी आवश्यकता नहीं। साँची के स्तूपकी सुन्दरताके बारेमें डाक्टर मारशल और डाक्टर कुमार स्वामी बहुत कुछ लिख चुके हैं। मैं क्या पिष्टपेषण करूँ? भवन-निर्माण कलामें स्तूपका विशेष स्थान है। यदि आपके पास तोंद है तो बौद्ध-काल की नुमायशमें रखने योग्य वस्तु है। इसमें और भी एक कला है। जब कोई तोंदैल व्यक्ति हँसता है तब तोंद कैसे हिलता है मानों बिहारमें भूकम्प आ गया है और शेरशाहका मकबरा हिल रहा है, या कछुआ मलेरियामें काँप रहा है।

तोंदकी उपयोगिताके सम्बन्धमें तो रीमों कागज काला किया जा सकता है। आजकल उपयोगितावादके युगमें और आर्थिक सङ्कटके जमानेमें प्रत्येक वस्तुका मूल्य होता है। प्रत्येक वस्तुके सम्बन्धमें यह आँका जाता है कि इससे लाभ क्या है। तोंद ऐसी चीज है जिससे बड़े लाभ हैं। मान लीजिये, आपके बच्चेको देखादेखी फुटबाल खेलनेकी धुन सवार हुई। वह मचल रहा है, रो रहा है। आप बाजार जाइये, फुटबाल खरीदिये, ब्लाडर खरीदिये, हवा भरिये तब लड़केको दीजिये। फिर लड़का दौड़े और खेले, ठोकर लगी और अगर गिर पड़ा तो डाक्टर के यहाँ दौड़िये, दवा खरीदिये। यदि आपके पास तोंद है तो चुपकेसे लेट जाइये। न हवा भरनेकी किचकिच, न फटनेका डर, बच्चेसे कहिये, 'बेटा लो किक करो' लड़केको फुटबालकी प्रोक्टिस भी हो गयी। आपका पैसा भी बचा, हाजमा भी दुरुस्त हो गया ऊपरसे। बच्चेको चोट लगनेका भय नहीं, गिरेगा तो तोंदके गद्दे पर।

आप राह चल रहे हैं। ट्रैफिककी तेजीका आजकल जमाना है। आप किसी ताँगे या मोटरसे टकरा गये। यदि आप दुबले या पतले हैं तब एम्बुलेंस कारकी आवश्यकता पड़ेगी। आँख, नाकका अगर बीमा नहीं हुआ तब परमात्मा ही मालिक है। और अगर आपके पास तोंद है तो फिर क्या? पहला धक्का तोंदपर ही लगेगा। चेहरा साफ बच जायगा। ज्यादा चोट भी नहीं आयेगी। तोंद 'एलास्टिक' होती है। ऐसे मौकेपर 'शॉकऐबजार्बर' का काम देगी। और नहीं तो कमसे कम आपकी आँख सलामत रहेगी तब अपनी हालत तो देख सकेंगे।

अगर आपके पास खासी अच्छी तोंद है तो कुश्तीमें भी आराम है। आपके जोड़का हाथ ही कमरके चारों ओर नहीं पहुंचेगा, वह दाँव क्या लगायेगा? आजकल स्त्रियोंके आदरका काल है। उन्हें आराम देना चाहिये। सब कहीं उनकी इज्जत करनी चाहिये। आप तीसरे दर्जेमें सफर कर रहे हों, और कोई महिला भी उसीमें आ जाय तो उसे आराम देना आपका कर्तव्य ही नहीं धर्म हो जाता है। आज-

कल तीसरे दर्जे में चलना राष्ट्रीयता समझी जाती है और तीसरे दर्जे में गद्दा होता नहीं। आप स्वयं लेट जाइये और महिला महोदयाको अपनी तोंदपर बैठा लीजिये। फर्स्टक्लासकी गद्दीका आनन्द उन्हें आयेगा। आपको थियेटर और सिनेमामें काम करना है और किसी विशेष अवस्थामें दर्शकोंको प्रसन्न करना है। आपको पेटपर तकिया बाँधनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। सभा-सोसाइटी, मजलिस-महफिलमें तोंद देखकर ही लोगोंको 'सीट' मिलती है। अतोंदवालों को कोई नहीं पूछता। तोंदवालोंकी बड़ी पूछ होती है। दंगा अगर हो तो तोंदवालोंको आगे खड़ा करके अपनी रक्षा कर सकते हैं। तोंदवाले किलेका काम दे सकते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि कहीं चन्दा माँगना हो तो बिना तोंदवाले एक व्यक्तिको साथ लिये आप आसानी से चन्दा वसूल नहीं कर सकते हैं, इसलिये इसका बड़ा महत्व है। 'महिमा अमित न कहि सकहिं सहस सारदा सेस' जितना तोंदके लिये उचित है उतना और किसी वस्तुके लिए नहीं।

इतना होनेपर भी कुछ लोग इसके विरुद्ध हो रहे हैं। मालूम होता है, उन्हें तोंदका आनन्द नहीं मिला है। आशा है, अगली असेम्बली-में कोई देशहितैषी सज्जन 'तोंद प्रोटेक्शन बिल' पेश करेंगे। तोंद राष्ट्रकी सम्पत्ति है, देशका सहारा है।

सबसे उपयोगी साहित्य

साहित्यमें रुचि रखनेवाले रसिकोंने कहा है कि कविता, नाटक, गद्य, पद्य, चंपू, रिपोर्टाज सभी पढ़ा जाता है किन्तु सच्चे साहित्यप्रेमी को जितना आनन्द विज्ञापन पढ़नेमें आता है उतना और किसी रचनामें नहीं। जिस प्रकार युवकको रोमांस पसद है, पूंजीवादीको टैक्समें धोखा देना प्रिय है, संपादकको बिना पैसा लेख छापनेमें आनन्द है; पथिकको राहमें पड़ा रुपया पानेमें गुदगदी है उसी प्रकार पाठकोंको विज्ञापन पढ़नेमें आनन्द आता है। मिश्र, तिवारी और उपाध्याय रुष्ट न हों कि केवल पाठकका नाम क्यों लिखा। हम तो विज्ञापन बाँचने में सुखका अनुभव करते हैं। ऐसी बात नहीं है। सभी ब्राह्मण पाठक हैं, चाहे सभी पाठक ब्राह्मण न हों। ऐसी कल्पना की जा सकती है, कि अमुक मनुष्य ईमानदार है, ऐसी भी कल्पना की जा सकती है कि अमुक मनुष्य झूठ नहीं बोलता किन्तु विज्ञापन पढ़ कर ब्रह्मानन्दमें लीन नहीं हो जाता ऐसे व्यक्ति नहीं हैं। यदि कोई कहता है कि

ऐसा हूँ—तो उसे अपना नाम बदलकर ढोंगी, पाखंडी इत्यादि नाम रखना चाहिये।

कविता रचनेमें कलाकी आवश्यकता, छन्द रस अलंकारके ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है इसके बिना भी महाकवि हो सकता है किन्तु विज्ञापन बनानेके लिए मानसशास्त्रकी आवश्यकता है। जनताकी मनोवृत्तिके अध्ययन बिना विज्ञापन नहीं बन सकता। अनेक दवाइयोंके विज्ञापन छपते हैं। पढ़िये दो चार विज्ञापन। आपको ऐसा जान पड़ेगा कि मुझे भी इस रोगके कुछ कुछ लक्षण हैं, और आप औषधि मंगा लेते हैं। अच्छी और बढ़िया दवाइयाँ जिनसे अवश्य लाभ होता है महात्मा लोग बता देते हैं और ठीक भी है। साधारण डाक्टर वैद्य, हकीम कैसे औषधि बना सकता है। पहाड़ों पर घूमते ऐसे महात्मा आपको मिलेंगे जिन्हें आपपर तरस आयेगी और ऐसी दवा आपको बता देंगे कि आप अच्छे भी हो जायँगे और उसे बेचकर धन भी अर्जित करेंगे। मुझे अनेक बार पहाड़ों पर जानेका अवसर मिला है। इधर-उधर घूमा भी हूँ—कि कोई महानुभाव ऋषि मिल जाँय। बाल काला करनेकी दवा पूछ लूं। मुझे कोई कभी और कहीं नहीं मिला। भाग्यवानको इन लोगोंके दर्शन मिलते हैं।

आपने सीजर सिगरेट और एनोज फ्रूट साल्टका विज्ञापन पढ़ा होगा! सीजर सिगरेट पीनेसे कितनी शांति मिलती है पहले पहल मुझे विज्ञापन द्वारा ज्ञात हुआ। सिंहका दांत आपकी खोपड़ीपर लगा हो, आप रेलकी लाइनपर लेटे हों फिर भी यदि सीजरका सिगरेट आपके मुँहमें है तो न तनिक भय है, न चिंता, न घबराहट। आत्म-हत्याके इस युगमें उसका प्रयोग बहुत अच्छा है।

विज्ञापन न होता तो अमृतधारा अभी तक मोहनजोदड़ोंके नगरकी भांति पंडित ठाकुरदत्त शर्माके बैठकेके बाहर जा सकती कि नहीं इसमें संदेह है। मेरे एक मित्र हैं उनकी पत्नी शरीरको स्वच्छ रखनेकी सदा इच्छुक रहती हैं। एक युवतीके लिए इससे अच्छी और क्या

बात होगी। मुझसे उन्होंने पूछा कि कौन साबुन सबसे अच्छा होता है। मैंने पेयर्सका नाम बताया। उनकी देशभक्ति और पतिभक्तिमें कोई अन्तर नहीं है। मुझसे कहा किसी देशी साबुन का नाम बताइये। मैंने कहा मैं इसका विशेषज्ञ नहीं हूं। तीन चार दिनों बाद उन्होंने कहा—मेरी समस्या सुलझ गयी। और उन्होंने बहुत समाचारपत्रों के टुकड़े दिखाये। एकमें लिखा था अमुक अभिनेत्री लक्स लगाती है। अमुक अभिनेत्री हमाम लगाती है, इसी प्रकार लगभग आधे दर्जन अभिनेत्रियोंके प्रिय साबुनोंका नाम बताया और अपना यह विश्वास बताया कि इनमें से प्रत्येक साबुन में से एक एक टुकड़ा लेकर सबको एकमें पीसकर लेप बनाऊँगी और वही लगाऊँगी। मैं इस आशामें हूँ कि एक महीनेमें उनका सौन्दर्य—जहां तक रंगका प्रश्न है, क्योंकि उनके चेहरेकी बनावट ठीक वैसी ही है जैसी राम लीलामें सुग्रीवका चेहरा होता है—सुरैया+नरगिस+काननबाला+गीताबाली+शोभना +लीला चिटनीस-सा बन जायगा।

विज्ञापनके ही भरोसे घूरेराम जिन्होंने दर्जा तीन तक हिन्दी पढ़ी समालोचक सम्राट हो गये, और श्री कतवारू प्रसाद विशारदकी पुस्तक महाकाव्य हो गयी। आपको किसी पत्रके लेख समझमें न आते हों, कवित्व बुद्धिकी सीमाके परे जान पड़े किन्तु विज्ञापन आप बिना कठिनाईके पढ़ सकते हैं और साथ ही आनन्द भी उठा सकते हैं। मधुमती भूमिका तक पहुँच सकते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि अश्लील विज्ञापन नहीं छपना चाहिये। अश्लील क्या है इसकी परिभाषा जब तक राष्ट्रसंघकी शिक्षा समिति न बना ले तब तक क्या अश्लील है कहा नहीं जा सकता। अश्लील विज्ञापन नहीं छपना चाहिये वैसे ही जैसे विधवा विवाह नहीं करना चाहिये। मेरी समझमें तो ऐसे विज्ञापन छपना समाजके लिए आवश्यक है। उन्हींके सहारे हमारे युवक तथा युवतियां कामसूत्र तथा अनंग रंग और 'साइकोलोजी आव सेक्स' पढ़े बिना कामशास्त्रके ज्ञान

में प्रवीण हो जाती हैं। डाक्टर तथा वैद्यको फीस दिये बिना अपने रोगका अचूक इलाज कर लेते हैं। कितनी कुमारियोंकी लाजकी रक्षा हो जाती है। फिर हम कैसे कहें कि इस प्रकारका विज्ञापन समाजके लिए ठीक नहीं है।

लोग कहते हैं कि विज्ञापन झूठे होते हैं। व्यापारकी सरिताके दो ही किनारे हैं। पूँजी और झूठ। विज्ञापन व्यापार है फिर वह झूठ बिना कैसे चल सकता है। आप दवा बेचते हैं और कहें कि मेरी दवा तीन पैसे में बनी है और इससे केवल ज्वरमें लाभ होता है तो कौन आपकी औषधि मोल लेगा। आपको कहना होगा कि इसके बनानेमें ४२ महीने लगते हैं, कुछ औषधियाँ इनमें ऐसी हैं जो मंगालियासे आती हैं और केवल ग्यारह रुपये पौने छ आने लागतके लगे हैं तब जनताका विश्वास होगा। उसकी उपादेयता और मूल्य बढ़ जायगा।

विज्ञापन विशेषतः भारतीय, समय काटनेके सबसे उत्तम उपाय हैं और रातमें नींद लानेकी सर्वोत्तम औषधि।

दीमक

कभी-कभी जब पैसे बचते हैं पोथियाँ खरीद लेता हूँ। कुछ पढ़ता हूँ, कुछकी सूची देख लेता हूँ। रख देता हूँ। कभी मित्र आते हैं तो प्रशंसा करते हैं। बड़ा अच्छा पुस्तकालय बना रखा है। कोई कहता है बड़ी परिष्कृत रुचि है। कोई कहता है बड़ा पढ़नेवाला है। इसमें सत्य एक भी नहीं है। किन्तु मित्र जब प्रशंसा करते हैं तबीयत बड़ी प्रसन्न होती है। एक बार एक व्यक्ति कहने लगे क्या रद्दियोंमें पैसा खराब करते हो। पचास सौ वर्षोंमें सड़कर गलकर सब नष्ट हो जायगी। जो पैसे इसमें लगाये उसका सोना खरीदते, गहना बनवाते। किन्तु मुझपर कभी इन बातोंका प्रभाव नहीं पड़ता। मैंने पुस्तकें एकत्र करना बन्द नहीं किया।

कल मन नहीं लग रहा था सोचा कुछ पढ़नेके लिये निकालूँ। यों ही एच० जी० वेलस लिखित संसारका इतिहास आलमारीमेंसे निकाल लिया। आलमारी युद्धकालमें बनी थी इसलिए शीशे उसमें

नहीं थे। पुस्तकें यों ही पंक्तिमें खड़ी थी जैसे रणक्षेत्रमें विविध प्रकारके सैनिक हों और उन्हींके समान धूल धूसरित भी थीं। वेल्स कृत इतिहास लेकर आराम कुरसी पर लेट गया। पुस्तक खोलनेको ही था कि देखा वेल्स शब्दके ऊपर ही एक छेद। मैंने समझा मेरी अनुपस्थितिमें किसीने वेल्सका अर्थ अंकित करनेकी चेष्टा की है और छोटा-सा कूप बनानेका प्रयास किया है। देशी छपी पुस्तक होती तब तो यह समझता कि विशेष प्रकारकी डिजाइन है। यहाँ पुस्तकके कवरकी विचित्र-विचित्र डिजाइनें बनती हैं। किन्तु पुस्तक विशुद्ध लन्दनकी छपी थी। मक्केसे जो लौटता है हाजी बनकर लौटता है। लन्दनकी छपी पुस्तक भी आदर्श होती है।

मैंने पुस्तक खोली। अन्दर जो विचित्रता देखनेमें आयी वह काव्यसे भी कल्पनातीत, उपमासे भी सुन्दर, प्रेमसे भी अधिक उलझानेवाला सपनेसे भी मनोरंजक था। बहुतसे कलाकारोंके सम्बन्धमें पढ़ा सुना भी है। अजन्ताकी चित्रकारी देखी है। रवि बाबूकी और महादेवी वर्माकी भी। किन्तु यह पता न था कि दीमक महोदय भी महान कलाकार हैं। उनकी कलाकी कौन शैली है मुगलकी, कांगड़ा, की, राजपूत कलम है कि बङ्गालकी मेरी समझके बाहरकी बात है। किन्तु मनोमुग्धकारी, मंजुल, महती, मार्मिक और मधुर कला वह अवश्य थी। कहीं नाना प्रकारके पक्षी वृक्षोंमें बैठे हैं, कहीं मंगल ग्रहकी नहरें बनी हैं, कहीं ताजमहलका कनगुरा है। एक स्थानपर ऐसा जान पड़ा कि सलीबपर हजरत मसीहका सिर बनाया गया है, तो दूसरी जगह महात्मा बुद्धका रथ है जिसे छोड़कर जंगलकी राह उन्होंने ली। जो पृष्ठ खोलता हूँ किसी सुन्दर अलबमका पन्ना, अजन्ताकी किसी चित्रशालाका एक कमरा जान पड़ता है। कैसे-कैसे घुमाव और कैसी कैसी कटान थी। बारीकसे बारीक तूलिका उसके सामने पानी भरे। एक पृष्ठमें नूरजहाँका चित्र था। ठीक आँखपर दीमक महादेवने आपरेशन कर दिया था। इसी आँखको देखनेके लिए जहाँ-

गीरने शेर अफगनका बध किया था। यह वह आँख थी जिसके सामने जहाँगीर भी ठहर न सकता था। दीमकका यह साहस, उसकी यह निरंकुशता, उसकी यह निर्दयता। मेरी आँखोंमें जल भर आया। कहीं-कहीं लोगोंने मेरा चित्र भी छापा है। इसी बेरहमीसे दीमक अपनी भूख मेरी नाक, मेरा कान खाकर शान्त करेगा। यदि उसे अवसर मिल गया। एक नकशा था तुरकीकी १९२० की संधिका। सारी तुरकी को दीमक राम साफ कर गये थे। जान पड़ता है इसे भी कुछ ऐतिहासिक घटनाका आभास था। इतिहासकार उतना उसे स्पष्ट न कर सका था जितना इस छोटेसे कीड़े ने।

कहीं-कहीं शब्द और अक्षर ऐसे लोप हो गये थे कि उन्हें पढ़ने और समझनेके लिए सिर खपानेमें बड़ा आनन्द आ रहा था। वैज्ञानिकोंने दीमकके सम्बन्धमें बड़ी-बड़ी बातें लिखी हैं। उनके समाजकी व्यवस्था कैसी होती है वह घर कैसे बनाते हैं। उन्हें नष्ट करनेके लिए क्या उपाय करने चाहिये। किन्तु यह नहीं बताया कि दीमक एक सिरेसे पुस्तकोंका भक्षण क्यों नहीं करते। कहीं एक स्थान साफ करते हैं तो कहीं दूसरा। क्या स्वर्गसे उन्हें चित्रकारीकी शिक्षा मिली है। किसी विशेष अक्षरसे उन्हें प्रेम है। कुछ समझमें नहीं आता।

यह तो सिद्ध है कि विद्यासे, पुस्तकोंसे इन्हें बहुत प्रेम है। यदि 'ग्रन्थी-भवति पण्डितः' ठीक है तो यह पण्डित हैं। अङ्ग्रेजी सरकारने इनकी उपेक्षा की तो कोई बात नहीं, राष्ट्रीय सरकार इन्हें महोपाध्याय या डाक्टर बना दे तो इनका समादर हो जाय। पुस्तक रखनेवाले इनसे सदा सशंक रहते हैं। प्रतिद्वंदियोंसे तो लोग बुरा मानते ही हैं इसमें क्या सन्देह है। आप स्वयं न पढ़िये तो वह भी न पढ़ें। मुझे इतना सन्तोष हो गया कि मैंने यह पुस्तक नहीं पढ़ी तो दीमकोंने तो इसे चाटा। इनका पेट भी भरा होगा ज्ञानकी तुष्टि भी हुई होगी। इतिहास की जानकारी भी हुई होगी। हम तो समझते हैं पुस्तकोंका शांतचित्तसे उपयोग करनेवाले यही जीव हैं।

मनुष्य इन्हें अपना वैरी समझता है क्योंकि मनुष्यका ज्ञान ऊपरी होता है। पुस्तकके भीतर पैठनेवाले तो यही होते हैं। एक पण्डितजी हैं जिन्हें परलोकका ज्ञान है, कुछ लोगोंका कहना है भगवानसे इनका साक्षात्कार हो चुका है। इन्होंने भगवानका चरण भी छुआ है। कहते थे सेमलकी रुईके समान मुलायम था। वह कहते हैं कि जो ऐसे विद्वान होते हैं जिनकी ज्ञान-पिपासा इस जीवनमें शान्त नहीं होती वही दीमक बनाकर ब्रह्माके यहाँसे भेजे जाते हैं। यदि यह सत्य है, और पण्डितजी की बातको असत्य कहनेका साहस कमसे कम मैं नहीं कर सकता तो ऐसे सुयोग्य बड़े बड़े महान व्यक्ति होंगे। मैंने अपनी पुस्तकको बड़े जतनसे पुराने रेशमके रुमालके बेठनमें रख दिया। कौन जानता है इसमें होमर, सेक्सपियर, काँट, हीगल, भाष्कराचार्य, दण्डी, मम्मटका अवतार हो, ईश्वरसे प्रार्थना की कि इसी बहाने जरा आलमारीमें बड़े,बड़े विद्वानोंको निवास होगा।

कुछ नई बाजियाँ

पुराने नवाबोंके जमानेमें तीतरबाजी, बटेरबाजी, कबूतरबाजी, पतङ्गबाजी इतने जोरोंसे प्रचलित थी कि शायद ही कोई रईस इन बाजियोंसे बाज आता था। अब भी उनके नामलेवा भारतवर्षमें रह गये हैं। परन्तु अब वे केवल लकीर पीट रहे हैं। नई सभ्यताके विकासके साथ-साथ जहाँ पाजामेका स्थान पतलूनने ले लिया, गड़-गड़ेके स्थानपर टुबैको पाइप आ गया, पगड़ीकी जगह सोला हैट आ गयी, उसी प्रकार नई बाजियाँ भी आ गयी हैं।

सबसे प्रचलित आजकल कलाबाजी है। जिसे देखिए वह कला-कार है। कलाके नामपर कविता और संगीत और चित्रकारीने अजीब कलैया खायी है। यदि कोई कहानी फीकी हो तो कहिये कि केवल कलाके लिए लिखी गयी है। यदि चित्र भद्दा दिखायी पड़े, जिसमें अंग-प्रत्यंग बेढंगे बने हों तो समझिये उसमें कला है, नवीन कला है।

कविताका तो पूछना ही क्या है। जिसकी समझमें कविता न आवे उसे समझिये निरा नीरस है। रोज नये कलाबाज और कलाकार हमारे देशमें पैदा होते जा रहे हैं। कोई अपनेको अरिस्टाटिल, जोशुआ रेनाल्डस्, कैंट, क्रोचेसे कम नहीं समझता। जिसे देखिये वही कलाकी एक परिभाषा लिए खड़ा है।

दूसरी बाजी लीडरबाजी है। कोई लीडर बनकर राजनीतिक लगाम पकड़े भारतवर्षका रथ हाँक रहा है, कोई लीडर बनकर सामाजिक सुधारका भोंपू बजा रहा है, कोई साहित्यिक अखाड़ेमें लीडर बनकर बेचारे सीधे सादे साहित्य सेवियोंको गालियाँ सुना रहे हैं। जिसे कोई काम न मिला, वह लीडर है। जिसे अपने पेटके धन्धेसे काफी फुरसत मिलती है, वह लीडर है। जिसके बाप कुछ सम्पत्ति छोड़कर गये हों और जिसे कुछ व्यापार, व्यवसाय या नौकरी-चाकरी नहीं करना है, वह लीडर है। कविने ठीक कहा है!

लिख गयी क्लर्की हमारे नाम है,
लीडरी आसान सबसे काम है।

न इसके लिए किसी परीक्षाकी जरूरत, न डिगरी और डिप्लोमाकी माँग, न किसी सिफारिशकी खोज। जो पूरे लीडर नहीं बन सकते वह लीडर नहीं तो लीडरों की दुम जरूर हैं। हमारे देशमें अनुयायी कम हैं, लीडर अधिक। कवि ठीक कहता है—

नहीं उपजता धरतीमें कुछ,
खेतमें फैला रेता है।
एक उपज बस यही देशमें,
नेता या अभिनेता है।

डिक्टेटरबाजी पश्चिममें जोरोंसे प्रचलित है। हमारे देशमें उसका उतना जोर नहीं है, फिर भी उसकी कमी नहीं है। राजनीतिमें तो है ही। जो नेता कहें आँखें मूँदकर बिना अनुभवके मानते जाओ।

कूएँ में गिरो चाहे खाईं में, चलो उधर ही जिधर तुम्हारे लीडर कहें। यह है डिसिपलिन जनाब, मर्यादा इसीको कहते हैं। सबको विचार करनेका क्या अधिकार है ? अपनी बुद्धिपर ताला लगा दो, तभी देश का कल्याण होगा। इसीमें हमारा हित है। यह तो रही राजनीतिकी बात। अब साहित्यमें भी डिक्टेटरशिपके लिए आवाज बुलन्द हो रही है। एक व्यक्ति जो कह दे वही सब लोग मानें। जो व्याकरण वह बना दें, वही चले। वह जिसको कह दें, वही चले। वह जिसको कह दें वह स्त्रीलिङ्ग, वह जिसे कह दे वह पुलिङ्ग। हिन्दीमें नपुंसक लिङ्ग होता ही नहीं, यद्यपि हिन्दुस्तानमें ऐसे लोग हैं जिनके लिये इस शब्दकी आवश्यकता है। जो वह लिख दें वही हिन्दी भाषा, जिसे वह कहें, वही कविता, बाकी सब शब्दाडम्बर या शब्दजाल है। जिसे वह कहें वही लिखें बाकी लोग अपनी लेखनीको गंगा-सागरको समर्पित कर दें। कितनोंको इसका बड़ा दुख है कि हिन्दीमें अभी डिक्टेटर नहीं बने। कितने इसी अफसोसमें यह संसार छोड़कर स्वर्गको चले गये। मगर हिन्दीवालोंके दुर्भाग्यसे अथवा उनकी जिदसे अभी साहित्यमें डिक्टेटरावतार नहीं जन्मा। देखें कलियुग के किस चरणमें इसका जन्म होता है। और तबतक उसके गुणानुवाद गानेवाले रह जाते हैं कि नहीं। और एक नई बाजी है मीटिङ्गबाजी जिसके साथ कांफ्रेंसबाजी भी सम्मिलित हैं। दिनमें चौबीस घंटे होते हैं। परन्तु पचीस मीटिङ्गें होनी हैं। यदि आपका अपटुडेट रहना है और संसारके साथ चलना है, यदि आप पुराने दकियानूसी नहीं बनना चाहते, तो सबमें जाइये और डायसपर बैठिये। कोई प्रस्ताव अवश्य उपस्थित कीजिये या कमसे कम अनुमोदन या समर्थन तो जरूर ही कीजिये। कानफ्रेंसोंकी तो कुछ बात ही नहीं। किसी जमानेमें एकाध राजनीतिक अथवा सामाजिक कांग्रेस अथवा कानफ्रेंस होती थी। अब तो रैदास कांफ्रेंस, भंगी कांफ्रेंस, हलवाई कांफ्रेंस, मोची, मल्लाह, कुर्मी, काछी, तेली, तमोली, कायस्थ, खत्री, क्षत्री, वैश्य, ब्राह्मण सभी की

कानफ्रेंस होती हैं। उसमें भी कायस्थोंमें बारह कानफ्रेंस, ब्राह्मणोंमें चालीस, क्षत्रियोंमें इक्यावन अलग-अलग कांफ्रेंस होती है। राजनीतिमें कोई उग्र है तो कोई अति उग्र है, कोई शान्त है, कोई महाशान्त है। इस प्रकार कानफरेंस बाजियोंसे हमारे देशमें विशेष चहल-पहल रहती है। रेलवे कम्पनीको भी विशेष लाभ हो जाता है। अगर इनमेंसे कोई राउण्ड टेबिल कांफरेंस हुई तब तो कोई बात ही नहीं। सैरकी सैर हो जाती है। अखबारोंमें भी छप जाता है। जहाँ कोई नयी बात हुई एक कानफरेंस हो गयी। देश मुर्दा नहीं है, इसके लोग जीते-जागते, चलते-फिरते मनुष्य हैं। इसीसे साबित होता है।

कविता सम्मेलनबाजी हिन्दीवालोंकी विशेष सम्पत्ति है। इसीसे मालूम होता है कि अमुक व्यक्ति कवि है। नहीं तो क्या पता था? होमियोपैथिक डाक्टर और हिन्दीके कवि जिस रेटसे बढ़ रहे हैं, उस रेटसे बरसातमें मेढक भी नहीं पैदा होते।

जिसको देखा बन गया पोइट वही,
आजकल कविताका फैला जर्म है।

कालराके मौसिममें कालराके जर्म भी इतनी तेजीसे नहीं फैलते। जब कवि हो गये तब कवि-सम्मेलन होना आवश्यक है। आपके लड़केका कर्ण-वेधन हो तो कविता पाठ होना चाहिये। आपकी बीबी जिस दिन नयी साड़ी पहने, कवि-सम्मेलन होना चाहिये। आपकी सास जिस दिन मर जायँ कवि-सम्मेलन होना चाहिये। कहनेका अभिप्राय यह है कि हिन्दुओंमें दुख या सुखका कोई अवसर ऐसा नहीं है जब ब्राह्मण भोज और कवि सम्मेलन न हो सकता हो। हमारे एक मित्रकी कुतियाको एक साथ चार पिल्ले पैदा हुए थे, उस समय एक कवि-सम्मेलन हुआ था। बड़े-बड़े कवि उस समय पधारे थे और खूब कविता-पाठ हुआ था। कवि-सम्मेलन हिन्दी-साहित्यकी विशेष संस्था है। कुछ नासमझ लोग इसे मिटानेकी चेष्टा करते हैं; परन्तु

यह उनकी भूल है। परन्तु इससे हताश न होना चाहिये। "जिन खोजा तिन पाइयाँ" खोजनेवालोंको क्या नहीं मिल जाता ?

कितनी बाजियाँ हैं, कहाँतक लिखा जाय ? नवीन सभ्यताकी सब बाजियोंका वर्णन होनेपर एक हिन्दी-शब्द-सागर-सा वृहत् ग्रंथ बनाना पड़ेगा। परन्तु एक बैठकबाजीका वर्णन और करना चाहता हूँ। इसका अर्थ बैठकमें बैठना नहीं है। इस बैठकबाजीने कितने लोगोंकी समय असमय पर बड़ी रक्षा की है। आपसे कोई पुस्तक माँगने आवे और आप इनकार नहीं कर सकते तो आप कह सकते हैं कि ताली आपकी श्रीमती लेकर अपने मित्रसे मिलने चली गयी हैं आपसे कोई मित्र रुपया उधार माँगने आवें और आप छूँछा उत्तर देनेमें हिच-किचाते हों तो कह दीजिये कि शामको सेविग बंकमेंसे निकाल कर दूँगा। और शामको आप घरसे रफूचक्कर हो जायँ। यह है बैठक-बाजी। अंग्रेज लोग इस कलामें बड़े पटु होते हैं। इसीका नाम नीतिकारोंने रखा है, 'साँप भी मारा जाय और लाठी भी न टूटे।' यह बड़ी उपयोगी कला है। स्कूलोंमें विद्यार्थियोंके बड़े कामकी है। राजनीतिज्ञोंके बड़े कामकी है। नेताओंके बड़े कामकी है। विश्व-विद्यालयोंमें इसके सिखानेका प्रबंध होना चाहिये।

बरसात

बरसात भी कैसा शब्द है जिसे सुनकर किसीके हृदयसे कसक उठती है, किसीको ससुराल याद आती है, किसीको स्कूलसे छुट्टी मिलकर घरपर तास खेलनेका ध्यान आता है। बनारसवालोंको चुनार और टाँडाफालकी सैरकी सूझती है। मकान - मालिक घबरा जाते हैं कि अब आया समय किरायेदार सिर खाने लगेंगे। यह मरम्मत नहीं हुई, वह मरम्मत नहीं हुई।

मेरा अनुभव तो बरसातका कुछ और ही है। मई और जूनके महीनोंमें जो गर्मी पड़ती है कि दिमाग भाप बनकर उड़ जाता है। भारतीय सभ्यताकी रक्षाके लिए डेढ़ गजका एक अँगोछा कमरमें लपेट अवश्य लेता हूँ। मगर बराबर दिल यही कहता रहता है कि किसी 'न्यूडिस्ट' क्लबका मेम्बर हो जाऊँ। कुछ घड़ी शायद आराममें बीत जाय। बिजलीका पङ्खा 'एलेक्ट्रिक हीटर' का काम देता है। अगर पङ्खा-कुली रखकर देशी पङ्खा लगवा लें तो फिर उस कमरेमें बीबीको नहीं बैठा सकते। कोशिश बहुत करता हूँ कि कोई अन्धा पङ्खा-कुली मिल जाय परन्तु कोई मिलता नहीं।

ऐसी अवस्थाके बाद बरसातका आगमन होता है। क्यों न आनन्द आये। पहले दिन ज्यों ही पानी बरसता है हृदय नाचने

लगता है। तबीयत मस्त हो जाती है। बड़े-बड़े गोबड़ौरा तबीयतवालो के दिलमें तरंगें उठने लगती हैं। और जीवन काव्यमय बन जाता है। कलम लेकर कविता करने बैठ जाते हैं। समाचार पत्रोंमें भी आप देखेंगे कि बरसात में नदियोंमें बाढ़ और कवियोंमें भी बाढ़ आ जाती है। इधर मेढ़कोंकी टर्र उधर कविताओंकी गूँज सुनायी पड़ने लगती है। विषयके तो बाहरकी बात है परन्तु पाठक क्षमा करेंगे, एक बार मुझे भी कविता करनेका शौक चर्राया या यों कहिये कि ठण्डी-ठण्डी हवा बही कि बाल्मीकिकी रूह सिरपर नाचने लगी। हर-हर पानी बरस रहा था। इधर सर-सर-सर-सर कलम नाचने लगी। कलमने कागजोंसे स्पर्श किया कि नहीं इसमें सन्देह है। परन्तु देखता क्या हूँ एक कविता तैयार है। यह कविता खड़ी बोली है कि पड़ी, छायावाद है कि उजाड़ावाद, मैं नहीं कह सकता। साहित्यके धुरन्धर समालोचक इसपर प्रकाश डालेंगे। मैं इतना अवश्य कहूँगा कि बरसाती कविता है। असाढ़में इसका जन्म हुआ है और जब खूब पानी बरस रहा था। हाँ तब मेरी प्रतिभाकी चक्कीका आटा चखिये—

मनसूनकी जूनमें आयी हवा,
घरघोर घटाकी छटा यहाँ है।
नहीं रातमें मून है, नूनमें भी,
तम तोम ही देखो जहाँ वहाँ है।
कुछ हो जो शरारत माफ करो,
रिवोल्यूशनमें दिलका जहाँ है।
बरसातका 'बेढब' सीजन है,
मत पूछिये रीजनको कहाँ है?

यह मेरी प्रतिभा थी कि बरसातकी हवाका असर कह नहीं सकता। मगर इतना तो अवश्य कह सकता हूँ कि मनमें उमंग ऐसी उठती थीं जैसे असहयोग आन्दोलनमें जयके नारे उठते थे। और मुझे विश्वास है कि मेरा दिल शरीरके ढाँचेमें बन्द न होता तो कभी उड़कर

भाग गया होता और मालूम नहीं किस छप्परपर जाकर बैठ जाता; फिर यह लेख आपको नसीब न होता।

मगर बरसातका आनन्द तो धीरे-धीरे आ रहा था। तबीयत उमंगमें थी ही। श्रीमतीजीकी फरमायश थी कि आज कुछ खास चीजें बने। बादलकी घड़घड़ाहटके साथ जीभभी कलैया मार रही है। मेरी आदत शामको खा लेनेकी है। भोजनकी सामग्रियाँ देखकर मुँहमें पानी भर आया। अभी भोजन आरम्भ किया था कि तितली मेरे चेहरेकी ओर मँडराने लगी मैंने समझा शायद उसे गुलाबका धोखा हो गया, क्योंकि इन दिनों मैं तन्दुरुस्त हो गया था। फिर देखा दूसरी फिर तीसरी। यह तो तितली नहीं फतिंगे थे। देखते-देखते मेरी थाली प्रेमका रङ्गस्थल अथवा मकतल बन गयी। देखिये बिसमिलोंका हजूम। प्रेमकी शराबमें मस्त मतवालोंने मेरी थालीमें ही आत्म हत्या करनेको ठानी। कोई आलूके सालनमें डूबकर जान दे रहा था, कोई लौकीके शोरबेमें डुबकियाँ लगा रहा था। किसीने कचौड़ीसे सिर टकराया, कोई रायतेके दलदलमें धँस पड़ा। देखते-देखते विप्रलम्भ शृङ्गारका ऐसा नाटक थालीपर ही खेला गया कि मैंने बरसातको सौ-सौ बधाइयाँ दीं। उस रात खाना मुँहमें न गया।

दस पन्द्रह दिन बरसातके बीत चले होंगे, कभी-कभी धूप-छाया की कोमिडी-ट्रेजिडी लगी रहती थी। एक रात आकाश बहुत साफ था। नीले अम्बरमें तारे ऐसे चमक रहे थे मानो हिन्दोस्तानके मैदानमें विलायत की परियाँ खड़ी हैं। बाहरकी छतपर सोया। शीतलता काफी थी, नींद आ गयी। थोड़ीही देर देखता क्या हूँ कि कानके समीप गाना हो रहा है। मैंने सोचा सपनेमें रेडियो सुन रहा हूँ। साथ ही किसीने कानमें कुछ चुभाया मैंने समझा श्रीमतीजी मजाक कर रही हैं। फिर एक बारगी पैरमें भी कुछ विचित्र खुजलाहट पैदा हुई। इसीके साथ कुछ झुँझलाहट भी पैदा हुई। नींद भाग चुकी थी। मैं होशमें आ रहा था। मिस्टर मसकिटोने अपनी सारी सेना सहित हमला कर दिया

था। हैनिबलका हमला, सिकन्दरका हमला, हिन्डनबर्गका हमला तो मैंने सुना था परन्तु फील्ड मार्शल मासकिटोका हमला! बरसातमें और युद्ध बन्द रहते हैं मगर इनका अफेन्सिव-हमला-आरम्भ हो जाता है। किसी प्रकार बाहरसे उठकर कमरेके अन्दर गया। वहाँ गरमी तङ्ग करने लगी। मसक महा प्रभु वहाँ भी सी० आई० डी० की भाँति पीछे-पीछे लगे रहे। मसहरी लगाई। इस मसहरीके भीतर भी श्री मच्छरराम घुसनेकी कोशिश कर रहे थे। एकाध सफल भी हो जाते थे गरमीका पूछना क्या?

बरसातमें बाहर सोनेका मजा मच्छरने किरकिरा कर रखा था। कभी-कभी मसहरी लगाकर सोता तो उस दिन जानबूझकर पानी बरसता। उठते उठते मसहरी भींगकर बेकार हो जाती। जिस बरसातके आरम्भमें इतनी उमंगें थीं, जिसके आने के लिये बड़ी-बड़ी मिन्नतें माँगी, अन्तमें उसने मेरे ऊपर इस रूपसे प्रहार करना आरम्भ किया। मैंने भी निश्चय किया कि कमरेके भीतर मसहरी तानकर सोया करूँगा।

मेरा ऊपरका कमरा छप्परसे छाया हुआ है। किस सनमें वह छाया गया इसमें मतभेद है। कुछ लोग कहते हैं, जब हुमायूँ बकसरकी लड़ाई से हारकर भागा था, यह उसी सालका है। दूसरे लोग कहते हैं कि नहीं यह महत्व देनेके लिए कहा जा रहा है। वारेन् हेस्टिंग्स और चेतसिंहमें जब युद्ध हुआ था, तबका छाया है। यह खोज इतिहासके प्रोफेसरोंके लिए छोड़कर मैं अपनी बीती सुनाना चाहता हूँ। मैं उसी कमरेमें सोया। एकाएक नींद खुली। और पैरपर कोई चीज गिरी टप। उधर भी बिस्तर मोड़ा कि दायें टप, फिर बायें टप। मैं बिस्तर मोड़ता गया। और आखिर करता क्या? टप-टपके बाद धार आरम्भ हुई। मैंने बिस्तर मोड़ना जारी रक्खा और स्वयं भी सिकुड़ता चला गया। कोई जिमनास्टिकका प्रोफेसर मुझे देखता तो पुरस्कार देता। मैं सिकुड़कर परफेक्ट स्क्वैर बन गया। थोड़ी देरमें मेरी चारपाई

कुछ हिली। मैंने नौकरको पुकारा। वह लालटेन लेकर आया तो कहता है, "बाबूजी कोठरिया चूअत हौ का"? रोशनीमें मैंने देखा कि कमरेमें कमसे कम दो इंच गहरा पानी है। भला बरसातके कारण यह आनन्द तो आया। मुझे वह शेर याद आया।

टपककर छतसे पानी जब,
कि भर जाता है सावनमें।
मज़ा आता है अपने झोपड़ेमें,
हमको वेनिसका!

बिना एक धेला खर्च किये वेनिसका मज़ा आ गया। दूसरे दिन सबेरे मेरी श्रीमती मुँह बनाये आयीं और बोलीं कि आज खाना कैसे बने। मैंने बड़ी सहानुभूति सूचक मुद्रा बनाकर कहा, 'क्यों क्या खत आ गया'? बात यह थी कि मेरी नानीकी मौसी बीमार थीं। वह बोलीं, 'कैसा खत जी'। इंधन सारा भींग रहा है, आग ही नहीं जलती। चार बोतल तेल गिरा चुकी परन्तु अब भी वह सत्याग्रह किये बैठी है। अब शामको खाना।

ज्यों ज्यों बरसातका मौसम बढ़ता जाता था मेरी नाकोंमें दम था। घरमें आफत, बाहर आफत, छाता है वह भी किसी बेवकूफके दिमाग़की उपज है। खोलो तो मालूम पड़ता है कि खोपड़ीपर खंचिया ढोये चले जा रहे हैं। बन्द करो तो ठीक छड़ीका भी काम नहीं देता। हाँ वाटरप्रूफ बड़ा सस्ता हो गया है। मगर उसके पहननेके बाद आठ आनेका साबुन चाहिये, नीचेके कपड़ेकी बदबू साफ करनेके लिए।

रास्तेमें केचुए और मेढक, घरमें ८०७५६९२१ प्रकारके कीट पतङ्ग यह बरसातकी देन है। हाँ, बरसातमें खुजली भी हो जाती है। यह बड़ी अद्भुत वस्तु है। उसके खुजलानेमें जो आनन्द आता है मानो प्रभु ईसामसीह स्वर्गकी बादशाहत दे रहे हैं।

ऐनक

बीसवीं सदीका गहना, पढ़े-लिखोंका खुला सार्टिफिकेट, शिक्षा-प्राप्त स्त्रियोंका अ-गवाँरू शृङ्गार, कम पढ़े-लिखोंके रोबका साधन, रईसोंके आवश्यक रोगकी दवा और दूकानदारोंके सेंटपरसेंट मुनाफेकी सामग्री, ऐनक का प्रयोग भारतमें बड़ी तेजीसे फैल रहा है। गणना और तालिकाके इस युगमें सम्भवतः लोग मेरी बातका विश्वास न करें, पर यदि सरकारकी ओर से इसका 'सेंसस' (गणना) लिया जाय तो किसी भले आदमीका घर शहरों मे ऐसा न मिलेगा जिसमें एक न एक व्यक्ति ऐनक अर्थात् चश्मेका प्रयोग न करता हो। हाँ, गाँवोंमें इसका प्रचार नहीं हुआ है। मगर गाँव तो उन्नतिके मार्गमें अभी बहुत पीछे हैं।

वैयक्तिक बड़प्पनके तीन साधन हैं—कलाई घड़ी, फाउन्टेनपेन तथा आँखोंपर ऐनक। जिसके पास तीनों हैं वह फर्स्ट क्लास, जिसके पास दो, वह सेकेण्ड क्लास और इनमेंसे केवल एक वस्तु जिसके

पास है वह थर्ड क्लास आदमी समझा जाता है। इसमें भी कई शाखाएँ हैं पर उनकी बारीकीमें मैं पाठकोंको ले चलना नहीं चाहता। फिर आप पूछेंगे कि जिसके पास यह तीनों नहीं वह किस क्लासमें है। सभ्य समाज उसे मनुष्य ही नहीं मानेगा क्लासकी कौन कहे। यही कारण है कि शहरके लोग गाँवमें रहनेवालोंकी गणना मनुष्योंमें अभी नहीं करते। जिस दिन गाँवोंमें भी रिस्टवाच लगा कर हरवाहे खेत जोतेंगे, अथवा चश्मा लगाकर घसियारिन यह देखकर कि कौन घास अच्छी है घास काटने लगेगी और पटवारी लोग नरकुलकी कलम छोड़कर पारकर फाउन्टेनपेनसे गाँवके काश्तकारों और जमींदारोंकी किस्मत भगवान चित्रगुप्तकी भाँति रँगना आरम्भ कर देंगे, उस दिन गाँवोंमें भी सभ्यताकी सनसनाती हवा चल पड़ेगी।

ऐनक भारतमें कबसे आया? कौन कह सकता है। ऋग्वेदमें इसका नाम नहीं है। आरण्यक कालके ऋषि चश्मा लगाकर सोमरस पीते थे या होम करते थे इसका पता नहीं। न स्वामी दयानन्दने इस विषयमें कुछ बतानेकी दयाकी है न सायनाचार्यने इस ओर संकेत किया है। पितामह पातञ्जलिने महाभाष्यमें इसका कुछ पता नहीं दिया है। मैक्समूलर के लिए भी यह गूलरके फूलके समान ही रहा। उस समय मान लिया पढ़ना नहीं था। सब श्रुतियाँ थीं परन्तु वेदोंमें जहाँ सुनते हैं हवाई जहाजके प्रत्येक पुरजेका नाम है और संसारका सारे ज्ञान-विज्ञानका भंडार भरा पड़ा है वहाँ इसका जिक्र नहीं है। यह मैं मान नहीं सकता। शायद इस ओर किसीका ध्यान ही नहीं गया या आया!

हिन्दी-साहित्यमें तुलसीदासने ऐनक नहीं इस्तेमाल की। अभिप्राय यह है कि इस शब्दका उपयोग नहीं किया गया। हाँ, हिन्दीके विख्यात कवि बिहारीलालने जिसे मिश्र बन्धुओंने 'काइयाँ' की उपाधिसे विभूषित किया है, इस शब्दका प्रयोग एक दोहेमें किया है—

"दिए लोभ-चसमा-चखन लघु पुनि बड़ो दिखाय।" मालूम पड़ता

है उस समय भारतवासियोंने चश्मा लगाना आरम्भ कर दिया था दूसरे शब्दोंमें सभ्यता-सूर्यकी किरणोंका प्रकाश देशमें आरम्भ हो चुका था। जिस प्रकार सभ्यताके और चिह्न हैं उसी प्रकार एक ऐनक भी है। शायद उस संघमें ऐनक सबसे महत्वपूर्ण है। मोटर बिना मनुष्यका काम चला सकता है, कुछ न हुआ तो पैदल चल सकता है। घड़ी न हो तो धूपसे समय की सूचना मिल सकती है। टाइपराइटर न हो तो दूसरेसे लिखा लीजिये, परन्तु चश्मा नहीं है तो दूसरेकी आँखसे आप देख नहीं सकते। और दूसरेके देखनेमें वह मजा भी तो नहीं है।

ऐनकसे कितना लाभ है। बहुत बड़ी सूची है। कहाँतक गणना कीजियेगा। आँखमें कोई धूल झोंकना चाहे तो आपकी ऐनक रक्षा करेगी दूरकी चीज देखनी हो तो ऐनक दिखा देगा अर्थात् वह आपकी दूरदर्शिका बनी, आँखे उड़ना चाहे तो यह ढालका काम देगी, आँखे उठना चाहे तो यह न उठने देगी। ठीक प्रयोग हो तो आँखोंको बैठने भी न देगी। आँख आनेवाली हो तो यह आने न देगी, और यदि आँख जाने वाली हो तो यह रोक देगी। आप कहीं आँख चुराना चाहें तो चश्मे के परदेमें चुपकेसे चुरा सकते हैं। आँख बचाना चाहें तो कोई भाँप न सकेगा। सादे चश्मेमें कभी कभी लोगोंको कठिनाइयाँ पड़ती थीं इसलिये विलायतके विज्ञानवेत्ताओंने खोजकर रंगीन ऐनकका आविष्कार कर दिया है। बड़ी बड़ी सभा, कांग्रेस, कांनफरेंसमें, रेलमें मेला तमाशेमें रंगीन ऐनक लगाकर उसकी ओट आप चाहें घटों घूरा कीजिये। आप अपनी आँखोंका फोकस जिसकी ओर चाहें लगा दीजिए, उसे पता न होगा। शायद खुली आँखोंको इस प्रकार कोई देखे तो लात खानेकी नौबत आ जाय। अवश्यही रंगीन ऐनकके आविष्कारक सरस मनुष्य वर्गके धन्यवादके पात्र हैं।

मानव-समाजको ऐनक कितनी प्रिय है, शायद इस विषयपर लोगों ने गौर नहीं किया है। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो ऐनक लगानेवालोंक

मजाक उड़ाते हैं। आप अपनी नाकपर मक्खी भले ही न बैठने दें परन्तु ऐनक किस शानसे आपका नाकपर जमकर बैठ जाती है जैसे घोड़ेपर सवार अथवा बैलके कन्धेपर जूआ। लोग अपनी स्त्री छोड़ सकते हैं। आखिर संसारमें तलाक होता ही है, पर अपना चश्मा किसीको छोड़ते नहीं सुना। यह जिसकी आँखमें लगा जीवन भर लगा उठते, बैठते, लिखते, पढ़ते, सोते-जगते यह ऐनक चिर-संगिनी बन जाती है। मैं ठीक नहीं कह सकता, परन्तु मैंने सुना है कि जिन्हें चश्मा लगानेका अभ्यास पड़ गया है वह जब बिना चश्माके सो जाते हैं तब उन्हें सपना भी साफ नहीं दिखायी देता। आखिर कैसे दिखाई दे?

कभी कभी ऐनक बड़ी सहायता दे जाती है। एक बार एक बाबू साहब थे। बड़े ठाट-बाटसे रहते थे, पर अंग्रेजी नहीं जानते थे। रेल से जा रहे थे। बगलमें एक देहाती बैठा था जो कचहरीके कामसे कहीं जा रहा था। उससे अपने बस्तेमेंसे एक कागज जो किसी जजका फैसला था निकालकर बाबू साहबको दिया और कहा, इसमें क्या लिखा है जरा पढ़ दीजिये। मैं देख रहा था कि बाबू साहबने कागजके नीचेका भाग ऊपर करके उलट लिया और एक मिनटके बाद जेबमें हाथ इधर-उधर डालकर कहने—"चश्मा घर भूल गया। पढ़ नहीं सकता।" मुझे हँसी आ गयी अगर चश्मा होता तो बाबू साहबकी शान कैसे रह जाती?

यदि आप अध्यापक हैं, पढ़ाते-पढ़ाते कुछ भूल गये या किसी छात्र ने कुछ पूछ दिया जो आपको तुरन्त नहीं आता है तो झट चश्मा उतारकर उसे पोंछने लग गये। और इसी बीच आप उत्तर सोच सकते हैं या कोई बहाना निकाल सकते हैं। आपकी कमजोरी कोई भाँप नहीं सकता। व्याख्यानदाताओंके तो बड़े ही कामकी चीज है। जहाँ कुछ भूले, जरा चश्मा उतारा, जेबमेंसे रुमाल निकाला, श्रोताओंकी ओर एक निगाह फेरी, फिर चश्मा लगाया और फिर भाषण आरम्भ किया। इन सब कारणोंसे आजकल यह बहुत ही उपयोगी वस्तु हो गयी है। आश्चर्य

तो यह है कि अभीतक सारा भारत चश्माबाज क्यों नहीं हो गया! ऐनकसे एक और लाभ है। हमारे पास कोई ऐसा वस्त्र, पहरावा, नहीं है जो सारे राष्ट्रके लिए एक हो। कोई कोट पहनता है, कोई अचकन। कोई चपकन, कोई धोती, कोई लंगोटी, कोई सूट तो कोई कुछ। पगड़ियों और टोपियोंमें भी भेद है। गांधी टोपी भी सब लोग नहीं लगाते. कोई ऐसी वस्तु ही नहीं है जिसे सब लोग अपना लें। ऐनक ही एक ऐसी चीज मालूम होती है। इसे अमीर-गरीब, मजदूर, मालिक, स्त्री-पुरुष, हिन्दू-मुसलमान, बौद्ध-जैन सब लगा सकते हैं। पुरुषोंमें बालक, युवा, वृद्ध, सभी शौकसे लगा सकते हैं। स्त्रियोंमें मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा सभीके मुखपर खिल सकता है। शिया, सुन्नी, वहाबी बिना झगड़ेके पहन सकते हैं। मन्दिर और मसजिद, गिरजा और आर्यसमाज कहीं चशमेकी रोक नहीं है। उग्र और माडरेट, कम्युनिस्ट और कैपिटलिस्ट. ब्रजभाषा और खड़ी बोलीवाले, छायावादी और जड़वादी किसीकी बरबादी इसमें नहीं है। भगवान वह दिन शीघ्र दिखाये जब सारा भारत चशमामय हो जाय। तब देखिये कितनी जल्दी राष्ट्रीय एकताके भाव फैलते हैं जब सब एक दूसरेको शीशेकी आँख से देखने लगेंगे।

विलायती

यों तो विलायतका अर्थ होता है विदेश किन्तु बहुत दिनोंसे भारतमें विलायतका अर्थ इंगलैंड ही समझा जाता है। और इंगलैण्ड भारतका शासक रहा है, भारतको उसने शिक्षा दी है, सभ्यता सिखायी है, कोट-पतलून पहनना सिखाया है, सुन्दरसे सुन्दर सिगार पीना सिखाया है और बहुतसे पश्चिमीय उपकरणोंका प्रयोग बताया है। इसलिये विलायत श्रेष्ठ स्थान समझा जाता है। विलायती वस्तुएँ श्रेष्ठताकी प्रतीक मानी जाती हैं। विलायतसे हो आनेका महत्व आज वही है जो सौ साल पहले बदरीनाथ, काशीनाथ, काशी या मक्का हो आनेका था।

मान लीजिये आपने बड़े परिश्रम, अध्यवसाय, लगन और प्रतिभाके साथ भारतके विश्वविद्यालयसे प्रथम श्रेणीमें एम० ए० परीक्षा पास की। फिर भी आपकी योग्यतामें कसर रही जाती है। आपको विलायत जाना आवश्यक है। नहीं तो विलायतसे लौटे हुए तीसरी श्रेणीके व्यक्तिके समान भी आपकी योग्यता नहीं समझी जा सकी। जैसे खरादपर चढ़ानेसे बरतनपर चमक आ जाती है, जैसे कपड़ा धोनेके

बाद लोहा करनेसे उसमें एक चमक आ जाती है, जैसे कचौड़ीको एक बार सेकनेके पश्चात् फिर सेकनेसे उसमें कुरकुरापन आ जाता है उसी प्रकार सब कुछ पढ़-लिख लेनेके बाद लन्दन जाकर लौट आनेसे रौनक आ जाती है। और इस रौनकके कारण मूल्य भी बढ़ जाता है। कालेजों, युनिवर्सिटियों तथा और संस्थाओंमें देशी व्यक्तियोंकी अपेक्षा विलायती व्यक्तियोंका अधिक सम्मान होता है।

यह ता हम लोगोंमें सभीने हृदयंगम कर रखा है कि विलायतकी बनी वस्तुएँ सुन्दरतर, टिकाऊ और अधिक उपयोगी होती हैं। एक पुस्तक भारतमें छपे दूसरी आक्सफोर्डमें तो अवश्य ही आक्सफोर्ड वाली अच्छी समझी जायगी। न तो भारतमें वैसा टाइप मिल सकता है, न कागज, न जिल्द। जब हम बिजली का लट्टू खरीदने जाते हैं तब यही कहते हैं कि विलायतवाला दीजियेगा, भारतीय नहीं। बड़े-बड़े देशभक्त जिन्होंने महीनों जेलके भीतर इनकिलाब जिन्दाबादके नारों से जेलकी दोपहरकी नींद हराम कर दी वह भी जब दूकानपर कोई वस्तु मोल लेने जाते हैं तब देशीका नाम सुनकर मस्तककी कोमल खालमें तरंगें उठाने लगते हैं। कलकत्तेकी बनी फाउण्टेनपेन कोई नहीं मोल लेगा। अमेरिका और इङ्गलैण्डकी ही बनी वस्तु लोग मोल लेंगे। और क्यों न ले। गुणके ग्राहक सभी लोग होते हैं। यदि कोई देशी कार खाना घड़ी बनाये और कोई उसे खरीद ले तो समझिये कि उसका त्याग आठवें एडवर्डसे कम नहीं है। अपने देशकी वस्तुको छोड़कर दूसरे देशकी वस्तु ग्रहण करनेमें महान त्याग और बलिदान निहित है। इसे कौन नहीं मानेगा।

बहुतसे भले आदमी, राजा लोग, विलायती मेंमोंसे विवाह करते हैं। निश्चय ही उनकी कलात्मक शक्ति बहुत ऊँची होती है। भारतकी उन नारियोंके प्रणय सूत्रमें जीवन भर बँध जाना उन्हें कैसे स्वीकार हो सकता है जो पतिके साथ एक मेजपर भोजन करनेमें संकोच करती हैं, जो अपने माँगको सिन्दूरकी रक्तिम रेखासे सज्जित कर उस बर्बर

युगका स्मरण कराती हैं जब शरीरको लोग अनेक प्रकार रंगकर सुन्दर या असुन्दर बनाते थे।

विलायती लोगोंमें वह भी सम्मिलित हैं जो हैं तो भारतवासी किन्तु विलायत प्रवासके कारण भारतीय बातें हेय समझते हैं। जिन्हें हमारे आचार व्यवहारमें दकियानूसकी गन्ध आती है। विलायतमें कुछ दिन रह आनेके कारण उन्हें इस बातका स्वाभाविक अधिकर मिल जाता है कि वह समय-समय पर कहा करें कि कैम्ब्रिजमें ऐसा नहीं होता जब मैं इङ्गलैण्ड में था तब ऐसा होता था। इन लोगोंसे कभी कभी सम्पर्कमें आनेका मुझे भी अवसर मिला है। इनके कथनानुसार यूरोप में साधारणतः और इङ्गलैण्डमें मुख्यतः कोई कभी झूठ नहीं बोलता। आचरण और सदाचारमें सब दूधके समान उज्वल होते हैं। इनके मुखसे वहाँके लोगोंके आचरणकी तुलनामें युधिष्ठिर पापी, हरिश्चन्द्र झूठे जान पड़ते हैं। प्रतिज्ञापालन करनेमें तो इङ्गलैण्डवालोंका ऐसा उदाहरण दिया जाता है कि हम भारतवासी आश्चर्यके अखाड़ेमें कलैया खाने लगते हैं, और भगवानको मनमें गाली देने लगते हैं कि इस अभागे देशमें क्यों जन्म दिया। गङ्गा कितनी भी पतित पावनी हों जब उसके तटपर बसनेवाले हीन ही ठहरे तब टेम्सके ही किनारे पैदा करना था।

कुछ अनुभव भी इस बातकी सत्यताकी पुष्टि करता है। भारतमें इङ्गलैण्डके अधिवासी अनेक पदोंपर काम करनेके लिये आते थे। चारों ओर उनकी प्रशंसाकी धूम थी। विलायती मानव बड़ा ही न्यायप्रिय माना जाता है, हिन्दुओंका विश्वास मुसलमानों पर नहीं होता, मुसलमान हिन्दूका विश्वास नहीं करता। अंग्रेज कर्मचारी दोनोंको पसन्द थे। क्योंकि इनके समान न्यायप्रिय कोई नहीं होता, और इनके न्याय का प्रमाण इस देशमें तथा अन्तर्राष्ट्रीय संसार में विदित है। लड़कपनमें जब एक छोटे दर्जेमें पढ़ता था तब अध्यापक सप्ताहमें कमसे कम चार बार यही कहा ही करते थे कि अंग्रेजोंके शासनमें शेर और

बकरी एक ही घाटपर पानी पीते हैं। और सच्ची बात निष्पक्षता और ईमानदारी अंग्रेजों और पश्चिमी देशवालोंके हिस्सेमें पड़ गयी तब और लोगोंको मिलती कहाँ से।

इन सब गुणोंके साथ-साथ विलायती वस्तुओंमें सौन्दर्य तो अनंत है। इसलिए यदि हमारा प्रेम विलायती वस्तुओंकी ओर जाय तो कौन-सा पाप है। देशी चूहा सबके घरमें है, लोग उसे विष देते हैं, पकड़-पकड़ बाहर फेंकते हैं। विलायती चूहा लोग बड़े प्रेमसे पालते हैं, देशी इत्र लगाकर कहीं जाना असभ्यता है, चाहे वह असगरअलीका हिना ही क्यों न हो। विलायती जिरेनियमका प्रयोग परिष्कृत रुचि समझी जाती है। देशी कुत्तेको बहुत आप पशुप्रेमी होंगे तो द्वारपर बैठाकर एक तामचीनीके बरतनमें रोटी भात दे देंगे। विलायती कुत्तेको गोदमें बैठाकर आप खिलायेंगे। आपके खानदानमें कभी मांस न पका हो किन्तु विलायती कुत्तेके लिए तो मांस पकाना आवश्यक ही है। देशी कपड़ा तो अशिष्टता का सूचक है ही। धोती पहनकर आप कहीं जा सकते हैं? पतलून फटी भी हो समादृत होती है।

अँग्रेजी सूट और डिगरियोंका स्वदेशी सरकारपर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। हमारे नेता भी विलायती पत्रकारों के प्रति अधिक स्नेह रखते हैं।

विलायती वस्तुओं, विलायती पशुओं, विलायती मनुष्यों, विलायती स्त्रियों में जो आकर्षण होता है, वह अन्य स्थानपर पाना दुर्लभ है और भारतीय नर-नारी तो उनके अनुकरणके लिए उनकी पूजा अभ्यर्थनाके लिए बने ही हैं।

कालीबिल्ली

मेरे घरमें एक काली बिल्ली आया करती है। मुझसे भी अधिक स्वतंत्रता मेरे ही घरमें उसे प्राप्त है, बहुतसे स्थान हैं जहाँ मैं भी जब चाहूँ—जा नहीं सकता। जिस कमरेमें मेरी श्रीमती जी रहती हैं उसका द्वार यदि बन्द हुआ तब मैं जा नहीं सकता। द्वार पर थप-थपाना होता है या पुकारना होता है। बिल्लीके लिए बन्धन नहीं है। वह ऊपरके जंगलेमेंसे चली जाती है। स्वतंत्रताका उपयोग मेरी समझमें बिल्लीसे अधिक कोई नहीं कर सकता। जैसे मीठेका उपयोग चींटेसे अधिक कोई नहीं कर सकता। बड़े-बड़े चौबे भी जो हिमालय को भी राई कर सकते हैं, चींटेसे हार जायेंगे। उसी प्रकार बिल्लीकी स्वतंत्रताके सम्मुख भी सबको सिर झुकाना पड़ेगा। हमारे प्रेमी वर्गने अनेक रूपसे अपनी अभिलाषाएँ प्रकट की हैं। कोई प्रेमिकाके चरणकी रज होना चाहता है. कोई उनकी गलीका भिखारी होना चाहता है; कोई वह पाउडर बनना चाहता है जिसका सेवन उनकी प्रेमिका करती हैं। मैंने ऐसी कल्पनाएँ भी विशेषतः कवियोंके मुखसे सुनी है कि उनकी आँखोंका चश्मा अथवा उनके अधरोंका लिपस्टिक बन जाऊँ। किन्तु यह किसी प्रेमीके हृदयमें भावना नहीं उठी कि मैं उनके घर जानेवाली बिलाई बन जाऊँ।

मैंने और भी बिल्लियाँ देखी हैं किन्तु न जाने क्यों यह बिल्ली मुझे बहुत पसन्द है। जब यह धीरेसे छीकेपर चढ़कर मलाईका बरतन खोलनेका उपक्रम करने लगती है तब इसका श्यामवर्ण मुझे वृन्दावन बरबस खींच ले जाता है। मैं बिल्ली और छीकेको भूल जाता हूँ। मेरे सामने ब्रजकी गोपियोंका चित्र उपस्थित हो जाता है और देखने लगता हूँ मेघवर्ण लीलाके आचार्य नटनागरको दही चुराते। और सामने दिखायी देती है ब्रजांगनाएँ जो भगवानको पकड़कर बाँधना चाहती हैं। भगवानको भी लोग बाँधनेकी चेष्टा करते हैं, मुट्ठीमें हवा पकनेकी बात सोचते हैं। मेरे घरमें लोग इस बिल्लीसे बहुत चिढ़ते हैं। सभी बिल्लियोंसे चिढ़ते हैं। इस बिल्लीसे विशेष रूपसे। इसका रङ्ग उन्हें अच्छा नहीं लगता। वह कहते हैं, यह तो चुड़ैल सी लगती है। मैंने चुड़ैल आज तक देखी नहीं। एक बार दिल्लीकी यात्रा कर रहा था एक महिला गाड़ीमें आयीं। देखकर मैं सहम गया था। जान पड़ता था ठठरीपर कागज चिपका दिया गया है। उजला महीन बांड पेपर। आँखें ऐसी जान पड़ती थीं मानो संगमरमरके हौदेमें एक सरसोंका दाना रखा हो। उसपर चश्मा लगा था दाँत उजले ऐसे जान पड़ते थे, मानो पंक्ति बाँधकर अंग्रेज खड़े हैं। मैंने समझा यही चुड़ैल है। मैंने सुन रखा था चुड़ैल स्वतन्त्रता पूर्वक घूमती ह। लोगोंको फँसा भी लेती है। लोगोंका रक्त पान करती है। मेरे सामने ही पटरीपर वह बैठी थी। मुजे भी डर लगा। यद्यपि मुझे विश्वास था फिर भी याद रहा कि गोस्वामीजीने लिखा है कि 'हनुमान जब नाम सुनावै, भूत-पिचास निकट नहिं आवै'। मैं मनमें हनुमान चालीसा पढ़ने लगा। कष्टके समय विश्वास-अविश्वास नहीं देखा जाता। मैंने देखा है कट्टर आर्य समाजियोंने बीमारीमें मृत्युञ्जयका पाठ बैठा दिया है और विवाहके अवसरपर गणपतिका पूजन कराया है। जो हनुमान चालीसाका पाठ सफल प्रतीत हुआ और वह महिला चुड़ैल नहीं थी। मुसम्मात चमत्कारी देवी उनका

नाम था और वह अखिल-भारतीय-शोषिता-महिला-सम्मेलन में सभा-नेत्री होकर आयी थीं। मैंने अनेक बार घरवालोंसे यह बात बतायी थी और कहा यह बिल्ली मुझे उनसे अधिक सुन्दर जान पड़ती है। जिस समय यह छज्जेसे उछलकर दूसरे कोनेपर कूदती है; मुझे ऐसा जान पड़ता है कि हालासे परिपूर्ण काली आँख इधरसे उधर घूमी है। आँखोंकी उपमा कवियोंने अनेक सजीव तथा निर्जीव वस्तुओंसे दी है। किसीने कमल माना तो किसीने खंजन। किसीने मछली और किसीने तीर और कटारी। मैं समझा यह उपमायें पुरानी भी हो गयी हैं, अनुपयुक्त भी। यदि पुराने कवियोंने यह काली बिल्ली देखी होती तो आँखोंकी उपमा इसीसे देते। इसकी उछल-कूद, इसकी धीमी-धीमी चाल; चूहोंपर आक्रमण, घातमें बैठना सभी आँखोंके लिए उपयुक्त है।

मैं कभी-कभी पूड़ीका एकाध टुकड़ा अथवा मलाईवाली कटोरी इसके सामने रख देता हूँ। विद्वान् ज्योतिषी गणना करके बता देते हैं कि अमुक संवत्में अमुक दिन इतने बजकर इतने मिनटपर ग्रहण लगेगा। यह बिल्ली न जाने कैसे गणना कर लेती है कि मेरे भोजनका समय आ गया। वह आकर दूर बैठ जाती है। मैंने अनेक बार इसे पास बुलानेकी चेष्टा की किन्तु निकट नहीं आती। एक बार अंगुलिमें मलाई लपेटकर मैंने इसे दिखाया। मैंने सोचा था यह अंगुली चाटने आयेगी। इसने देखा किंतु आयी नहीं। मनुष्योंसे अधिक बुद्धिमती यह बिल्ली जान पड़ी। मनुष्य तो बिछाये जालमें पकड़ जाता है। हस्ताक्षर किया नोट लेकर स्वयं अपने ऊपर मुकदमा चलवा देता है। मनुष्य बुद्धिमान है। विचारवान है। सब जीवोंसे अधिक किन्तु इससे बढ़कर मूर्खताका कार्य कोई कर भी नहीं सकता। सारी बुद्धिकी योजना अन्तमें मूर्खताके कार्यमें परिणत हो जाती है। बिल्लीके सामने अंगूर रख दीजिये वह नहीं खायगी। हड्डीका टुकड़ा रख दीजिये उसी भाँति ले लेगी जैसे लोग घूस ले लेते हैं। कहां शिक्षा मिली उसे कि

अमुक वस्तु खाद्य अमुक अखाद्य है। खाद्य विज्ञानके किसी प्रोफेसरने उसे नहीं बताया। सहस्त्रों वर्ष बीते बिल्ली नगरोंमें रहती है। लोगोंके घरोंमें घूमती है। विलायतमें महिलाएँ पालती भी हैं किन्तु कभी अपनी सभ्यताके उपयुक्त उसे कोई नहीं बना सका। बिल्लीको अहिंसक अथवा वैष्णव शाकाहारी कोई नहीं बना सका। वह वही वस्तुएँ आज भी खाती है जो उस समय खाती थी जब सत्यवादी हरिश्चन्द्र काशीके श्मशान घाट पर पहरा देते थे। मनुष्य बदल गया। कितने मनुष्य अपने दाड़िमके दानेके समान दाँतोंसे बोटियाँ चबाते हैं। भारतीय अहिंसावाले मटन चापका भोग लगाते हैं, विलायतके अस्थि कतरनेवाले पालककी पत्ती चाटते हैं। मनुष्य जो चाहे जब खा सकता है। जो चाहे जब पी सकता है। बिल्ली ऐसा नहीं कर सकती।

हमारे देशवासी बिल्लीसे घृणा करते हैं। यदि सामने कहीं दिखायी पड़े तो निश्चित हो जाता है कि कार्य सिद्ध न होगा। यदि कहीं रातमें बिल्ली रोती है तो निश्चय ही कोई मरनेवाला है। परमात्माके पास मुख नहीं है इसलिये वह तो स्वयं कुछ कह नहीं सकता, बिल्लीके द्वारा कहला देता है और बिल्ली अनेक रूपसे मनुष्यका भविष्य बता देती है। कमसे कम इसके लिए तो हमें भगवानको धन्यवाद देना ही चाहिये। इतना ही नहीं यदि आपके हाथसे बिल्ली कहीं यमलोक पहुँच जाय तो सोनेकी बिल्ली बनवाकर किसी विद्वान तथा प्रतिष्ठित ब्राह्मणको दान दीजिये। नहीं तो कई लाख वर्ष तक नर्ककी भीषण अग्निमें आपका भस्म बनता रहेगा।

इस भयसे तथा सरलताके कारण इस काली बिल्लीसे मैं बहुत प्रेम करता हूँ। वह कभी मेरे पास आती नहीं। तो चंद्रमा भी तो चकोरके पास नहीं आता। मुझे वह सविता कला दिखायी पड़ती है। उसकी कालिमामें भी प्रकाश छिपा दिखायी देता है जैसे कोयलेमें हीरा।